नई दिल्ली
रविवार, 31 मई, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-32 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

बनारस में इस तरह डिलीट किए गए नाम, पंजाब में भी एसआईआर को लेकर आम लोगों में डर 3,5
शी-पुतिन शिखर सम्मेलन के संदेश की डीकोडिंग 6

बुजुर्ग की बेमिसाल देखभाल 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

किसे उठानी होगी जिम्मेदारी और किसे देनी होगी कुर्बानी

भारतीय अर्थव्यवस्था का भविष्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि हम युद्ध के झटकों का सामना कैसे करते हैं। हालांकि इसकी कोई स्पष्ट रूपरेखा कहीं नजर नहीं आती

अरुण कुमार

हाल ही में हेग में भारतीय प्रवासियों से मुखातिब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि पश्चिम एशिया का युद्ध पिछले एक दशक की भारतीय अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों को जाया कर सकता है। कोविड-19, युद्धों और वैश्विक ऊर्जा संकट के झटकों का जिक्र करते हुए उन्होंने चेताया कि बड़े पैमाने पर गरीबी फिर लौट सकती है।

पीएम ने कहा कि इन चुनौतियों से निपटने के लिए भारत को मजबूत सप्लाई चेन की जरूरत है, और ऊर्जा संरक्षण को राष्ट्रीय कर्तव्य मानना चाहिए। पाठकों को नवंबर 2016 में नोटबंदी के दौरान की ऐसी अपीलें याद होंगी। शक नहीं कि कोविड न तो भारत की वजह से आया और न होर्मुज के बंद होने से पैदा सप्लाई संकट में भारत का हाथ है। लेकिन, इन झटकों से पहले भी अर्थव्यवस्था की हालत बहुत ठीक नहीं थी।

2014 से ही असंगठित क्षेत्र की कीमत पर संगठित क्षेत्र को महत्व दिया जा रहा है। इससे अर्थव्यवस्था में पूंजी और ऊर्जा की सघनता बढ़ी और बेरोजगारी, असमानता भी बढ़ी। भारतीय अर्थव्यवस्था की सेहत अब काफी हद तक संगठित क्षेत्र पर निर्भर है,जबकि इसमें केवल 6 फीसद श्रमबल काम करता है।

संपन्न वर्ग और संगठित क्षेत्र द्वारा पैदा 'काली अर्थव्यवस्था' तथा खराब प्रशासन के कारण नीतियां विफल होती रही हैं; वहीं, पूंजी के बाहर जाने से देश में पूंजी की कमी हो गई और विदेशी मुद्रा का नुकसान हुआ, जिससे 'भुगतान संतुलन' प्रभावित हुआ है। भ्रष्ट अमीरों ने विदेशों में अरबों-खरबों डॉलर जमा कर रखे हैं, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए उपलब्ध नहीं और इसी से प्रधानमंत्री को विदेशी मुद्रा बचाने के लिए 'किफायत बरतने' की अपील करनी पड़ती है।

ऊपर से भारत का आर्थिक डेटा संदिग्ध है। इसकी एक वजह 'काली अर्थव्यवस्था' तो है ही, लेकिन कुछ वजहें इसकी गणना के तरीकों से भी जुड़ी हैं। राष्ट्रीय जीडीपी को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते हैं, जबकि महंगाई को घटाकर। सरकार की आदत है कि वह जमीनी कमजोरियों को नजरअंदाज करके चमकदार तस्वीर पेश करती है। संकट के समय ये कमजोरियां सामने आ जाती हैं।

*

होर्मुज के बंद होने से पैदा सप्लाई संकट अर्थव्यवस्था की कमजोरी को बढ़ा रहा है। असंगठित क्षेत्र को उत्पादन में जबरदस्ती कटौती, घटती आय और बढ़ती बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। चौतरफा महंगाई ने क्रयशक्ति पर चोट की है। 3.5 फीसद की आधिकारिक मुद्रास्फीति गरीबों की असलियत नहीं दिखाती- यह ब्लैक मार्केट को गणना में नहीं लेती, जिससे प्रभावी महंगाई दर 30-40 फीसद बैठती है।

रुपये में गिरावट 75 दिनों में 5 फीसद और सालाना 24 फीसद रही है। इसका असर गरीबों पर ज्यादा पड़ता है, क्योंकि खाद जैसी आयातित जरूरी चीजें महंगी हो जाती हैं। रुपये में गिरावट पूंजी के बाहर जाने से जुड़ी है, और इसकी वजह अर्थव्यवस्था पर लोगों का भरोसा घटना है।

मई 2024 में डॉलर के मुकाबले 83.28 रुपये की विनिमय दर अब 96 हो गई है और फिसलन बरकरार है। दो सालों में रुपये में 15.2 फीसद गिरावट रही। डॉलर के हिसाब से देखें तो भारत में निवेश पर रिटर्न तेजी से गिरा है। जहां एक तरफ टेक्नोलॉजी शेयरों की बदौलत अमेरिकी शेयर बाजार में उछाल है, वहीं भारतीय टेक कंपनियां एआई से होने वाले बदलावों के दबाव में हैं। इसी से पूंजी (एनआरआई समेत) बाहर जा रही है। चूंकि रुपया लगातार गिर रहा है, निर्यातक कमाई लाने में देरी कर रहे हैं, जबकि आयातक ज्यादा से ज्यादा सामान मंगवा रहे हैं। इन वजहों से भारत का डॉलर भंडार छीज रहा है। इसके अलावा, पश्चिम एशिया में काम करने वालों की नौकरियां जाने और उनके भारत लौटने से 'रेमिटेंस' (विदेशों से आने वाले पैसे) पर भी बुरा असर पड़ा है।

मुक्त बाजार समर्थक अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि रुपये में गिरावट बाजार प्रेरित है और आरबीआई को रुपये का बचाव नहीं करना चाहिए। यह तर्क गलत है। सट्टेबाज इसका फायदा उठाते हैं और मुद्रा को और गिराकर पैसे बनाते हैं। इसके अलावा, मुक्त बाजार असल में पूरी तरह मुक्त नहीं होते; उन पर बड़े खिलाड़ियों का दबदबा होता है। रुपये में तेज गिरावट एक चेन रिएक्शन शुरू कर सकती है, जैसा दक्षिण-पूर्व एशिया संकट के दौरान हुआ था, जिसके कारण 1997-98 में तेजी से बढ़ती थाई अर्थव्यवस्था ढह गई थी। भारत को भी 1988 और 1991 के बीच ऐसी ही मुश्किलों का सामना करना पड़ा था।

> कुल निवेश का 99 फीसद आंतरिक निवेश है और असली चिंता इसी मोर्चे पर है। इसका सीधा रिश्ता क्षमता के कम उपयोग से है; ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बढ़ती असमानता से मांग घटती है

विदेशी निवेश की कहानी

2024 के आखिर से ही विदेशी निवेशक भारत छोड़कर जा रहे हैं। तर्क दिया जाता है कि उन्हें और रियायतें देकर लुभाना चाहिए। लेकिन, जैसा ऊपर बताया गया है, वे इसलिए जा रहे हैं क्योंकि उन्हें भारत के मुकाबले अमेरिका में बेहतर रिटर्न दिख रहा है।

लेकिन यह इतनी बड़ी चिंता क्यों है? कुल मिलाकर देखें तो यह भारत में कुल निवेश का 8 फीसद है, और निवल रूप से 1 फीसद से भी कम। साथ ही, अगर भारत घरेलू पूंजी को बाहर जाने को रोक पाता, तो उसे विदेशी मुद्रा की कमी ही नहीं होती।

कुल निवेश का 99 फीसद आंतरिक निवेश है, और असली चिंता इसी मोर्चे पर है। कम आंतरिक निवेश का सीधा संबंध क्षमता के कम उपयोग से है; ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बढ़ती असमानता से मांग घटती है। इसलिए, पूंजी को और रियायतें देने के बजाय, जैसा कि कारोबारी अर्थशास्त्री सुझाते हैं, कर-प्रणाली और रोजगार सृजन से आय के पुनर्वितरण के जरिये असमानता घटाने के उपाय की जरूरत है। उनके लिए, सुधार का मतलब है व्यवसायों को रियायतें देना, जबकि असल जरूरत तो असंगठित क्षेत्र में अधिक रोजगार पैदा करने की है। विदेशी पूंजी केवल संगठित क्षेत्र में आएगी, और उच्च तकनीक के इस्तेमाल को देखते हुए, इससे शायद ही कोई नया रोजगार पैदा होगा। इससे असंगठित क्षेत्र और हाशिये पर जाएगा और रोजगार सृजन में और कमी आएगी।

असंगठित क्षेत्र जो आंतरिक बाजार बनाता है, वह बाहरी बाजारों से कहीं बड़ा है। इस क्षेत्र में काम मिले तो लोगों की आय बढ़ेगी और मांग भी। कपड़ा, चमड़े के सामान, खाने-पीने की चीजें जैसे निर्यात होने वाले उत्पाद भारत में भी बेचे जा सकते हैं, बशर्ते लोगों के पास पैसे हों। इसलिए, इस बारे में नए सिरे से सोचना चाहिए।

विकसित देश सप्लाई चेन को छोटा करने और रोजगार बढ़ाने के लिए अपनी पूंजी को देश में ही निवेश कर रहे हैं। ट्रंप, व्यवसायों को अमेरिका में निवेश करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं और सहयोगी देशों पर दबाव डाल रहे हैं। व्यापार से भारत की समस्याएं हल नहीं होंगी, क्योंकि हमारे पास मुकाबला करने के लिए जरूरी तकनीक नहीं। भारत को अपनी पूंजी को देश के भीतर ही निवेश करना चाहिए। अंबानी अमेरिका में 300 अरब डॉलर का निवेश क्यों कर रहे हैं, भारत में क्यों नहीं?

रणनीति में बदलाव जरूरी

पता नहीं, होर्मुज कब तक बंद रहेगा।अर्थव्यवस्था को कमी का सामना करना पड़ेगा और उत्पादन प्रभावित होगा। भारत सिर्फ असर को कम करने की योजना बना सकता है, खासकर उन क्षेत्रों पर जो ज्यादा संवेदनशील हैं। जरूरी उपभोग को बनाए रखना होगा वर्ना महंगाई तेजी से बढ़ेगी। अनावश्यक यात्रा और पर्यटन, पांच-सितारा जीवन-शैली, और फिजूलखर्ची को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। उपभोग में कमी से विदेशी मुद्रा और ऊर्जा, दोनों की बचत होगी, जिन्हें जरूरी चीजों की ओर मोड़ा जा सकता है। रोजगार, आय और मांग पर निश्चित ही बुरा असर पड़ेगा, और कमजोर क्षेत्रों के श्रमिकों को सहारे की जरूरत होगी।

उत्पादन में कटौती, अनिश्चितता और विभिन्न क्षेत्रों में अतिरिक्त क्षमता के कारण निवेश में गिरावट की आशंका है। लेकिन जरूरी चीजों, सामाजिक क्षेत्र और वंचित कल्याण के लिए सार्वजनिक निवेश बनाए रखना होगा।

*

प्रधानमंत्री जी, बड़े पैमाने पर गरीबी कभी खत्म नहीं हुई, लेकिन गलत नीतियों से यह बदतर जरूर हो सकती है। भारत के गरीब और असुरक्षित तबके से सबसे बुरे हालात का सामना करने और अधिक कुर्बानियां देने के लिए तैयार रहने को कहने के बजाय, उन 3 फीसद संपन्न भारतीयों से एक खास अपील करने पर विचार करें, जिन्होंने अपना ढेर सारा पैसा विदेशों में जमा कर रखा है और जो फाइव-स्टार जीवनशैली जीते हैं। ■

अरुण कुमार जाने-माने अर्थशास्त्री और लेखक हैं

फोटो: गेटी इमेजेज

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अपील के बाद हैदराबाद में रसोई गैस के लिए कतारबद्ध लोग

कैसे करें सीबीएसई परीक्षा नतीजे पर यक़ीन?

नए ऑन-स्क्रीन मार्किंग सिस्टम की शुचिता अब पूरी तरह संदिग्ध है। क्या होगा अगर सिस्टम में ही कोई भ्रष्ट तंत्र सक्रिय हो?

ए. जे. प्रबल

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने 2026 के शुरू में भारत की परीक्षा प्रणाली में ऑन-स्क्रीन मार्किंग (ओएसएम) नाम से एक बड़े बदलाव की शुरुआत की और इसे क्रांतिकारी सुधार बताया। इसके वादे प्रभावशाली थे- मानकीकृत मार्किंग, तेज नतीजे, पारदर्शिता, इंसानी गलतियों का खात्मा, और घर या विदेश से भी दूरस्थ मूल्यांकन सुविधा।

लेकिन, यह प्रयोग न सिर्फ बुरी तरह विफल रहा, सिस्टम और साइबर सुरक्षा से जुड़ी तमाम खामियां उजागर कर गया। 'ओएसएम' की घोषणा 9 फरवरी 2026 को हुई, जब 17 फरवरी से शुरू होने वाली 12वीं की बोर्ड परीक्षाओं में एक हफ्ता ही था। 3 मार्च को यह मूल्यांकन विधि लागू कर दी गई, यानी एक माह से भी कम समय के भीतर। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का परीक्षार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों के साथ सालाना संवाद 'परीक्षा पर चर्चा' 9 फरवरी को देशभर में प्रसारित हुआ था। जाहिर है, यह महज इत्तेफाक नहीं था। (हालांकि, छात्रों और शिक्षकों की तमाम शिकायतों और 13 मई 2026 को घोषित नतीजों को रद्द करने की उठ रही मांगों के बावजूद, प्रधानमंत्री ने तब से इस मुद्दे पर चुप्पी साध रखी है।)

ऐसे में यह सवाल अहम हो जाता है कि आखिर एक निहायत नए मार्किंग सिस्टम को लागू करने की ऐसी क्या जल्दबाजी थी?

सीबीएसई नए सिस्टम का पायलट टेस्ट करने या इसे चरणबद्ध तरीके से लागू करने का फैसला लेता तो शुरू में ही सुरक्षा संबंधी खामियां पकड़ में आ जातीं और उन्हें दुरुस्त कर लिया जाता। लेकिन, बिना जरूरी जांच-पड़ताल नए सिस्टम को लागू करने का नतीजा यह हुआ कि पोर्टल क्रैश हुए, लॉगिन फेल हुए, इंटरफेस धीमे लोड हुए, स्कैन की गुणवत्ता भी खराब रही। कुछ उत्तर पुस्तिकाएं धुंधली थीं या गायब, और कहीं सप्लीमेंट्री शीट गायब थी तो कुछ कहीं और लिंक हो गई थीं।

एक अनुमान के मुताबिक, मूल्यांकन प्रक्रिया में 25 से 30 हजार शिक्षकों ने हिस्सा लिया। लेकिन कई शिक्षकों का कहना है कि उनकी ट्रेनिंग केवल तुरत-फुरत आयोजित

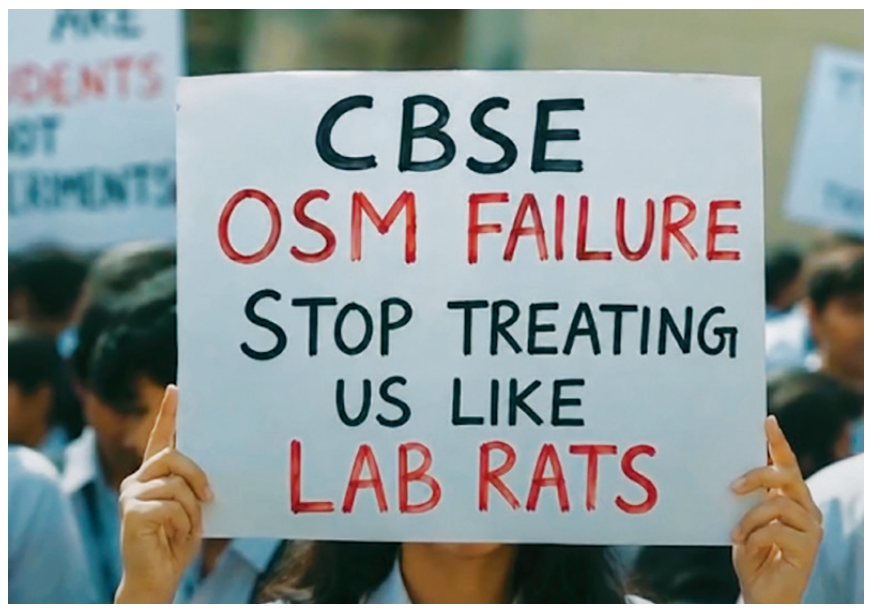

वेबिनार और 'मॉक इवैल्यूएशन' तक सीमित रही। कुछ मूल्यांकनकर्ताओं ने बताया कि उन्हें अभ्यास के लिए एक हफ्ते से भी कम समय मिला, जबकि अन्य का कहना था कि कॉपियां जांचने की यह प्रक्रिया नतीजे घोषित होने से एक दिन पहले तक चलती रही।

इस दौरान मूल्यांकनकर्ताओं को अपने नियमित शिक्षण और प्रशासनिक कामकाज के साथ-साथ कॉपी जांचने का काम भी संभालना पड़ा। ध्यान रखें, इन्हीं लोगों ने चुनावी राज्यों में बूथ लेवल अधिकारी की ड्यूटी भी निभाई। कड़ी निगरानी के बीच इस तरह कई मोर्चों पर एक साथ काम करना बेहद तनावपूर्ण था और इससे मूल्यांकन की गुणवत्ता से भी समझौता हुआ। इसके अलावा, कई शिक्षकों ने लगातार स्क्रीन देखने से थकान की भी शिकायत की।

दिल्ली यूनिवर्सिटी की पूर्व डीन और स्कूल एजुकेशन की प्रोफेसर, अनीता रामपाल ने एक पैनल चर्चा में कहा, 'हम इंसानी सोचने-समझने की प्रक्रियाओं को, जिन्हें खास तरीके से किया जाना चाहिए, किसी ऐसी चीज से नहीं बदल सकते जो बिना सोचे-समझे काम करती हो। आप आंसर शीट महज स्क्रॉल करके ऐसे ही नहीं जांच सकते। इन्हें पता होता है कि उनपर लोगों की नजर है। वहां कैमरे होते हैं। किसी को ज्यादा समय लगता, तो वे कहते उन्हें कोई फोन आ गया था यह मूल्यांकनकर्ता इस सवाल पर इतना ज्यादा वक्त क्यों ले रहा? हम रोबोट नहीं हैं, और हमें इंसानों को रोबोट नहीं बनाना चाहिए।'

सीबीएसई का दावा कि ओएसएम से सत्यापन और पुनर्मूल्यांकन की मांग में भारी कमी आएगी, अब भद्दे मजाक जैसा लगता है। अपने नंबरों और सिस्टम की अव्यवस्था से निराश होकर इस बार रिकॉर्ड 4 लाख परीक्षार्थियों ने-जो पिछले साल के आंकड़ों से चार गुना ज्यादा है-पुनर्मूल्यांकन के लिए आवेदन किया। इस पूरी गड़बड़ी ने छात्रों और शिक्षकों, दोनों को ही भारी मानसिक परेशानी में डाल दिया।

सीबीएसई का यह आश्वासन कि 'डिजिटल लॉ' (यह रिकॉर्ड रखकर कि किसने, क्या और कब जांचा) पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ाएंगे, इस अहम सवाल को ही नजरअंदाज कर गया कि क्या यह सिस्टम वास्तव में सुरक्षित है? जितनी आसानी से इस सिस्टम को हैक कर लिया गया, उसने पूरी मूल्यांकन प्रक्रिया को ही संदेह के घेरे में ला दिया है और कई तरह के असहज करने वाले सवाल खड़े कर दिए हैं। आखिर ऐसी जल्दबाजी में इस नए सिस्टम का रुख करने की जिद किसकी थी? वेंडर का चयन कैसे किया गया? क्या इस पूरे खेल में कुछ गड़बड़ी करने वाले तत्व सक्रिय थे? और सीबीएसई आखिर किस आधार पर इन नतीजों की विश्वसनीयता का दावा कर रहा है?

*

हालांकि दुनिया भर के विश्वविद्यालयों और बोर्डों ने मूल्यांकन प्रक्रिया डिजिटल की है, लेकिन इतनी कम तैयारी के साथ या इतने बड़े पैमाने पर यह कहीं नहीं हुआ। ज्यादातर मामलों में, बड़े पैमाने पर लागू करने से पहले कई वर्षों तक पायलट टेस्टिंग, क्षमता निर्माण, बुनियादी ढांचे की मजबूती और आकस्मिक योजना बनाने पर काम हुआ। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन का एक्यूए परीक्षा बोर्ड ओएसएम के जरिये 13 लाख छात्रों का मूल्यांकन करता है, जिसके लिए वहां 60,000 प्रशिक्षित परीक्षक होते हैं- यह संख्या सीबीएसई द्वारा अपने कहीं ज्यादा बड़े समूह के लिए नियुक्त परीक्षकों की संख्या से दोगुनी है। सीबीएसई के फेल होने में न सिर्फ जल्दबाजी, बल्कि आधे-अधूरे प्रशिक्षितों और अस्थिर आईटी इंफ्रास्ट्रक्चर का भी योगदान रहा।

टेक्नोलॉजी वेंडर का चयन भी विवादित रहा। कोएम्प्ट एडुटेक (पूर्व में ग्लोबारेना टेक) को अगस्त 2025 में ठेका मिला, जिससे उसे एक बेहद जरूरी सिस्टम तैयार करने, उसके परीक्षण, प्रशिक्षण और लागू करने के लिए छह महीने से भी कम समय मिला।

राहुल गांधी समेत विपक्षी नेताओं ने वेंडर चयन पर सवाल उठाए। उन्होंने 2019 में तेलंगाना के इंटरमीडिएट एग्जाम के मूल्यांकन से जुड़े कंपनी के दागदार ट्रैक रिकॉर्ड का मुद्दा उठाया। इसमें स्कैन की गुणवत्ता में खराबी और मार्किंग में गलतियों का अफसोसनाक अंजाम कई छात्रों की खुदकुशी रहा। वेंडर के ट्रैक रिकॉर्ड को देखते हुए तकनीकी, सुरक्षा और नैतिक पैमानों पर की गई 'जांच-पड़ताल' की विश्वसनीयता पर ही सवाल खड़े होते हैं। सीबीएसई ने न तो वेंडर के चयन या टेंडर के मापदंडों का खुलासा किया, और न ही यह सार्वजनिक किया है कि अन्य बोलीदाता कौन थे। सबसे बड़ा सवाल यह है कि अगर टेंडर की दौड़ में कोई और भी शामिल था, तो उसे दरकिनार कर एक दागी वेंडर को ही क्यों चुना गया?

मूल्यांकनकर्ताओं के प्रशिक्षण में हुई देरी और इसकी आधी-अधूरी शुरुआत एक और खतरे की घंटी है। अगर यह ठेका अगस्त 2025 में ही दे दिया गया था, तो फिर ट्रेनिंग इतनी देर से 2026 में क्यों शुरू की गई?

> सीबीएसई का यह दावा कि ओएसएम सिस्टम से पुनर्मूल्यांकन की मांग में भारी कमी आएगी, एक भद्दे मजाक जैसा है। असलियत यह है कि इस बार रिकॉर्ड 4 लाख परीक्षार्थियों ने पुनर्मूल्यांकन के लिए आवेदन किया

*

सीबीएसई की तब और फजीहत हुई, जब 25 फरवरी 2026 को पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी के 19 वर्षीय छात्र निसर्ग अधिकारी ने ओएसएम पोर्टल को हैक कर लिया।

शेष पेज 2 पर ▸

नीट पेपर लीक कांडः पेज 4

गिरते रुपये से सरकार की चांदी

अजित रानाडे

रुपये के गिरने को आम तौर पर एक मैक्रोइकोनॉमिक समस्या माना जाता है। इससे आयात की लागत बढ़ती है, महंगाई का दबाव बढ़ता है, निवेशक परेशान होते हैं और राष्ट्रीय गौरव को ठेस पहुंचती है। लेकिन भारत के हालिया अनुभवों ने एक अजीब विरोधाभास पैदा किया। रुपये की वही कमजोरी, जो बाहरी तनाव पैदा करती है, उसने केन्द्र सरकार का बड़ा वित्तीय फायदा भी किया। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा रुपये को संभालने के लिए डॉलर बेचने से बड़ा मुनाफा हुआ है, जिसे बाद में सरप्लस के तौर पर केन्द्र सरकार को ट्रांसफर कर दिया जाता है। इस तरह आरबीआई सिर्फ करेंसी को मैनेज नहीं कर रहा, वह सरकार के लिए कोषाध्यक्ष जैसा बन गया। इसे थोड़ी गहराई से समझने की जरूरत है।

आरबीआई के सेंट्रल बोर्ड ने वित्त वर्ष 2025-26 के लिए केन्द्र सरकार को 2,86,588 करोड़ रुपये का रिकॉर्ड सरप्लस ट्रांसफर मंजूर किया है। वित्त वर्ष 2024-25 में यह राशि 2,68,590 करोड़, 2023-24 में 2,10,874 करोड़ और वित्त वर्ष 2022-23 में 87,416 करोड़ रुपये थी। यह ताजा ट्रांसफर आरबीआई की मजबूत कमाई पर आधारित है, जिसमें रुपये को सहारा देने के लिए बड़े पैमाने पर डॉलर बेचने से हुआ मुनाफा और विदेशी संपत्तियों पर ज्यादा आय शामिल है।

2.9 खरब रुपये कोई छोटी-मोटी रकम नहीं। यह केन्द्र सरकार की कुल राजस्व प्राप्तियों का लगभग 8 फीसद है। इससे सरकार को बिना टैक्स बढ़ाए, खर्च में कटौती किए या बाजार से ज्यादा कर्ज लिए, वित्तीय राहत मिल जाती है। कच्चे तेल की ऊंची कीमतों, भू-राजनीतिक अनिश्चितता और राजकोषीय घाटे पर बढ़ते दबाव के इस दौर में, यह उपयोगी सहारा है। लेकिन चिंता का कारण भी यही है क्योंकि ऐसा सहारा कब एक आदत बन जाए, पता भी नहीं चलता।

गणित सीधा है। आरबीआई ने सालों डॉलर जमा किए, जब रुपया मजबूत था। जब वह आज उन डॉलरों को कमजोर विनिमय दर पर बेचता है, तो उसे रुपये में फायदा होता है। यह फायदा मुद्रा भंडार की दोबारा वैल्यू लगाने से होने वाला कागजी नहीं, बल्कि असली फायदा है। मुद्रा से जुड़ी गतिविधियों से होने वाली असली कमाई आरबीआई की आय में शामिल होती है, और फिर सरकार को दिए जाने वाले उसके सरप्लस में जाती है।

रुपये की गिरावट, जो आयातकों को नुकसान पहुंचाती है, तेल की कीमतें बढ़ाती है, देश की डॉलर जीडीपी को घटाती है- वही गिरावट, डॉलर बेचे जाने की स्थिति में आरबीआई का मुनाफा बढ़ाती है और सरकार को दी जाने वाली रकम भी

इसका मतलब है कि रुपये की कमजोरी से सरकार को आर्थिक रूप से अचानक बड़ा फायदा हुआ है। यह बात सुनने में थोड़ी अजीब लग सकती है, लेकिन यह इस विरोधाभास को पूरी तरह से सामने लाती है। रुपये की यही गिरावट, जो आयातकों को नुकसान पहुंचाती है, तेल की कीमतें बढ़ाती है, भारत की डॉलर जीडीपी को कम करती है और विदेशी निवेशकों को परेशान करती है- वही गिरावट, डॉलर बेचे जाने की स्थिति में आरबीआई के मुनाफे को बढ़ा देती है।

यह एक और वजह से भी मायने रखता है। अगर भारत की नॉमिनल जीडीपी रुपये के हिसाब से 10 फीसद बढ़ती है, लेकिन डॉलर के मुकाबले रुपया 10 फीसद से ज्यादा गिर जाता है, तो डॉलर के हिसाब से जीडीपी में मुश्किल से कोई बढ़ोतरी हुई।

कोई देश घरेलू तौर पर तेजी से बढ़ सकता है, लेकिन अगर मुद्रा में गिरावट से उसकी बढ़त खत्म हो जाए, तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वह रुका हुआ सा लग सकता है। इसलिए, रुपये की लगातार कमजोरी एक रणनीतिक चिंता का विषय बन सकती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि रुपये को किसी भी कीमत पर बचाया ही जाए। भारत एक 'चालू खाते के घाटे' वाली अर्थव्यवस्था है। यानी, वह जितना निर्यात करता है, उससे कहीं ज्यादा तेल, सोना, इलेक्ट्रॉनिक्स और अन्य चीजें आयात करता है। साथ ही, मीडियम टर्म में इसकी महंगाई दर भी अमेरिका से अधिक रहती है। रुपये का थोड़ा-बहुत कमजोर होना स्वाभाविक है और यह फायदेमंद भी हो सकता है। एक कमजोर करेंसी 'शॉक एब्जॉर्बर' का काम करती है। यह निर्यात की प्रतिस्पर्द्धा-क्षमता को बचाए रखती है, गैर-जरूरी आयात को हतोत्साहित करती है और अर्थव्यवस्था को बाहरी असंतुलन के प्रति सचेत रखती है।

खतरा सीधे मुद्रा अवमूल्यन से नहीं, बल्कि अव्यवस्थित अवमूल्यन से होता है। यहीं पर आरबीआई का हस्तक्षेप जरूरी हो जाता है: अस्थिरता को नियंत्रित करने, घबराहट को रोकने और उम्मीदों को स्थिर करने के लिए। लेकिन किसी स्तर की रक्षा करना अस्थिरता को नियंत्रित करने से अलग है। अगर बाजार को यकीन हो जाता है कि आरबीआई हमेशा एक विशेष स्तर की रक्षा करेगा, तो बड़े आयातक और डॉलर उधार लेने वाले अपने जोखिमों को कम कर सकते हैं। कृत्रिम रूप से मजबूत रुपया आयात को बढ़ावा देता है, निर्यात को हतोत्साहित करता है और समायोजन में देरी करता है। अंततः होने वाला सुधार अधिक कष्टदायक हो जाता है।

इसमें एक वित्तीय नैतिकता का मुद्दा भी है। अगर रुपये को बचाने से आरबीआई को बड़ा मुनाफा होता है, और उस मुनाफे से केन्द्र सरकार को अपना घाटा कम करने में मदद मिलती है, तो रुपये के अवमूल्यन में एक छिपा वित्तीय फायदा दिखने लगता है। यह कोई स्वस्थ प्रोत्साहन ढांचा नहीं। किसी भी सरकार को केंद्रीय बैंक की विदेशी मुद्रा गतिविधियों को बार-बार होने वाली आय का जरिया नहीं मानना चाहिए।

भारत की राजकोषीय प्रणाली में सरकारी उधार के लिए पहले से ही एक अंतर्निहित तंत्र है। वैधानिक तरलता अनुपात (एसएलआर) के माध्यम से, बैंकों के लिए जरूरी है कि वे अपनी जमा राशि का बड़ा हिस्सा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करें। इससे सरकारी ऋण के लिए एक निश्चित बाजार तैयार होता है। यह लंबे समय से चला आ रहा है, और भारत की वित्तीय संरचना का अभिन्न अंग है। लेकिन, यह एक तरह का 'वित्तीय दमन' है: नियमों के जरिये, घरेलू बचत का एक हिस्सा सरकारी उधार की ओर मोड़ दिया जाता है। अगर इसके अलावा, सरकार आरबीआई के बड़े अधिशेष हस्तांतरणों पर भी निर्भर हो जाती है, तो मौद्रिक प्राधिकरण और राजकोषीय सहायता के बीच की सीमा धुंधली पड़ने लगती है।

आरबीआई वित्त मंत्रालय नहीं। इसका काम कीमतों में स्थिरता, वित्तीय स्थिरता, मुद्रा प्रबंधन और मौद्रिक विश्वसनीयता बनाए रखना है। यह सरकार के लिए बैंकर का काम भी करता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि यह सरकार के लिए सिर्फ पैसे कमाने का जरिया बनकर रह जाए। चुनी हुई सरकारें स्वाभाविक ही ज्यादा खर्च करना, कम ब्याज दर पर कर्ज लेना और आसानी से फाइनेंस मिलना पसंद करती हैं। लेकिन इन्हीं कारणों से मौद्रिक संस्थाओं को बाहरी दबावों से सुरक्षित रखने की जरूरत होती है।

रुपये की कहानी भारत की बाहरी फाइनेंसिंग की चुनौती से भी जुड़ी है। कुल एफडीआई इनफ्लो बेशक अच्छा दिखे, लेकिन पैसे वापस ले जाने, विनिवेश और बाहर जाने वाले फ्लो की वजह से शुद्ध एफडीआई में खासी गिरावट आई है। विदेशी कंपनियां और प्राइवेट इक्विटी निवेशक बाजार से बाहर निकल रहे हैं। भारतीय इक्विटी बाजार कुछ हद तक इसलिए महंगे बने हुए हैं, क्योंकि घरेलू एसआईपी इनफ्लो स्थिर और मजबूत हैं। मजबूत घरेलू मांग बड़े एफआईआई आउटफ्लो के बावजूद बाजार में बड़ी गिरावट को रोकती है।

इससे एक सवाल खड़ा होता है। क्या घरेलू निवेशक, एसआईपी और आईपीओ सब्सक्रिप्शन के जरिये, परोक्ष रूप से विदेशी निवेशकों के लिए मुनाफेदार निकासी को आसान कर रहे हैं? हाल के कई बड़े आईपीओ में, जुटाए गए पैसे का बड़ा हिस्सा कंपनी के लिए नई पूंजी के तौर पर नहीं, बल्कि मौजूदा निवेशकों द्वारा 'ऑफर फॉर सेल' के रूप में गया है। नए निवेशक भविष्य के वादों पर पैसा लगाते हैं; जबकि पुराने निवेशक नकद पैसा लेकर निकल जाते हैं। यह गैर-कानूनी नहीं। बाजार ऐसे ही काम करते हैं। लेकिन जब यह चलन ज्यादा बढ़ जाए, तो इसकी बारीकी से जांच-पड़ताल होनी चाहिए।

कई बड़ी विदेशी कंपनियां पूरी तरह या आंशिक रूप से भारत से बाहर निकली हैं: होलीसिम, फोर्ड, हार्ले डेविडसन,सिटी बैंक का रिटेल बिजनेस, मेट्रो एजी, जीएम, केर्न, लैफ्रेज वगैरह। हर की अपनी वजह। लेकिन अगर सबको एक साथ देखें, तो ये बड़ी आर्थिक समस्या का संकेत करते हैं: भारत एक बाजार के तौर पर तो आकर्षक है, लेकिन यहां बिजनेस खड़ा करना, उसे चलाना आसान नहीं।

इसका मतलब यह नहीं है कि विदेशी निवेशकों का भरोसा खत्म हो गया है। गूगल के डेटा सेंटर प्लान, जियो में मेटा और गूगल का निवेश, और अन्य रणनीतिक निवेश दिखाते हैं कि ग्लोबल पूंजी अब भी भारत में आना चाहती है। लेकिन, डिजिटल पैमाने के लिए भारत में आना और गहरे मैन्युफैक्चरिंग में धैर्य के साथ पूंजी लगाना- दोनों में फर्क है। भारत को टिकाऊ एफडीआई की जरूरत है, न कि सिर्फ वैल्यूएशन के आधार पर आने-जाने वाले निवेश की।

इस संदर्भ में, रुपया सिर्फ स्क्रीन पर दिखने वाला नंबर नहीं। यह तेल पर निर्भरता, सोने का आयात, बाहरी वित्तपोषण में कमी, पोर्टफोलियो प्रवाह, घरेलू बाजार के मूल्यांकन और कारोबार के भरोसे को दिखाता है। आरबीआई इस सफर को आसान बना सकता है, लेकिन वह रास्ते को हमेशा के लिए नहीं बदल सकता। ■

अजित रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं।
सौजन्य: बिलियन प्रेस

कैसे करें सीबीएसई परीक्षा नतीजे पर यक़ीन?

पेज एक का शेष

न्यूज पोर्टल 'मनीकंट्रोल' से बात करते हुए उसने कहा, 'मेरे मन में उत्सुकता जगी। उन्होंने कॉपियों के डिजिटल मूल्यांकन के लिए एक नया पोर्टल (http://cbse.onmark.co.in) लॉन्च किया था। मैंने थोड़ी छानबीन की और मुझे यह डोमेन मिल गया। शिक्षक पहले से ही इसका इस्तेमाल कर रहे थे और ऑनलाइन इसके वीडियो भी मौजूद थे।'

उसने वेबसाइट की सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जावास्क्रिप्ट फाइलों को खंगाला और एक साधारण कीबोर्ड कमांड (Ctrl+F) के जरिये 'मास्टर पासवर्ड' खोज निकाला। सिस्टम के अंदर उसे जो दिखा, उसके शब्दों में वह 'भयानक' था।

एक सार्वजनिक ब्लॉगपोस्ट में, इस किशोर ने पांच गंभीर तकनीकी खामियों को उजागर किया, जिनमें 'ऑथेंटिकेशन बायपास (लॉगिन प्रक्रिया को चकमा देने) से लेकर पूरे अकाउंट पर कब्जा कर लेने' तक की कमियां थीं:

- सार्वजनिक रूप से उपलब्ध स्कूल कोड और 'फ्रंट-एंड' (वेबसाइट के बाहरी हिस्से) पर ही लीक हुए 'मास्टर पासवर्ड' का इस्तेमाल करके कोई भी व्यक्ति परीक्षक के तौर पर सिस्टम में लॉग इन कर सकता था।
- ओटीपी वेरिफिकेशन महज 'दिखावा' था, क्योंकि इसका 'सीक्रेट कोड' ब्राउजर पर ही था।
- सिस्टम में कोई 'रूट गार्ड' (सुरक्षा घेरा) न होने से यह एक खुले दरवाजे जैसा था; यानी आप बिना ऑथेंटिकेशन अंदरूनी पन्नों तक पहुंच सकते थे।

निसर्ग ने लिखा, 'राष्ट्रीय स्तर की किसी बोर्ड परीक्षा की विश्वसनीयता पर पड़ने वाले असर खुद-ब-खुद सब कुछ बयां कर देते हैं।' जब उसने उसी दिन 'सर्ट-इन' (CERT-In: कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम-इंडिया) को इन खामियों की जानकारी दी, तो उन्होंने उससे विस्तृत जानकारी और वीडियो सबूत मांगे। साथ ही आश्वस्त किया कि वे इस मामले को सीबीएसई के सामने उठाएंगे। कुछ खामियों को तो वाकई ठीक कर दिया गया, लेकिन अन्य को जस-का-तस छोड़ दिया।

मई में निसर्ग ने एक और तकनीकी खामी का पता लगाया, जिससे मूल्यांकनकर्ताओं के यूजरनेम, पासवर्ड और बैंक से जुड़ी जानकारियां उजागर हो रही थीं। उसने एक बार फिर 'सर्ट-इन' को बताया। हालांकि, इस बार उसे केवल एक ई-मेल के जरिये पावती ही मिली।

26 मई को, इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन (आईएफएफ) ने 'एक्स' पर पोस्ट किया, 'जब एक राष्ट्रीय स्तर की बोर्ड परीक्षा का सिस्टम इतनी आसानी से हैक किया जा सकता है, तो यह सवाल सिर्फ साइबर सुरक्षा का नहीं रह जाता। यह निष्पक्षता, भरोसे और लाखों छात्रों के भविष्य का सवाल बन जाता है।' आईएफएफ ने स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग के सचिव और सर्ट-इन के महानिदेशक को इस बारे में पत्र लिखा। इसने सीबीएसई द्वारा ओएसएम पोर्टल की सेवा लेने, उसे लागू करने और उसके संचालन की मंत्रालय स्तर की जांच की मांग की है। इसके अलावा, वेंडर के साथ हुए करार और उसकी जवाबदेही की समीक्षा करने, 12वीं कक्षा के नतीजों के मूल्यांकन की फोरेंसिक जांच सहित तत्काल सुधारात्मक कदम उठाने, तथा एक स्वतंत्र सार्वजनिक ऑडिट कराकर उसके नतीजों को सार्वजनिक करने की भी मांग की।

सच्चाई को स्वीकार करने से सीबीएसई इस कदर कतरा रहा था कि शुरू में उसने इससे ही इनकार कर दिया कि पोर्टल लाइव था; उसका दावा था कि निसर्ग ने किसी 'डमी' साइट को हैक किया है। लेकिन, जब निसर्ग ने यह ध्यान दिलाया कि यह डोमेन छात्रों को भेजे गए सीबीएसई के आधिकारिक संवाद में भी साझा किया गया था, तो पोर्टल को गुपचुप बंद कर दिया गया। ■

बंगाल में भाजपा से मुक़ाबले में कौन?

सौरभ सेन

*विधानसभा चुनावों के परिणामों ने 208 सीटों के साथ भाजपा को पश्चिम बंगाल की सत्ता में निर्णायक रूप से काबिज कर दिया है, जबकि तृणमूल कांग्रेस 80 सीटों के साथ नाममात्र का विपक्ष बनकर रह गई है। व्यापक परिदृश्य में देखें तो अन्य पार्टियां — सीपीएम, कांग्रेस, आईएसएफ — अब कोई खास मायने नहीं रखतीं। हालांकि, मत प्रतिशत के लिहाज से, भाजपा के पक्ष की तुलना में उसके खिलाफ ज्यादा लोगों ने मतदान किया है, जो बताता है कि विपक्ष के पास फिर से लामबंद होने की जगह और गुंजाइश, दोनों मौजूद हैं। इस **दो-भाग वाली सीरीज** में हम जानने की कोशिश करेंगे कि विपक्ष की यह जगह क्या आकार ले सकती है, संभावित खिलाड़ी कौन हो सकते हैं, किस तरह की चुनौतियां खड़ी कर सकते हैं और नीतियां बनाने एवं मुद्दों को उठाने के मामले में सरकार पर किस तरह का दबाव बना सकते हैं।*

पश्चिम बंगाल के नए मुख्यमंत्री शुभेंदु अधिकारी 9 मई को शपथ लेने के बाद से ही खासी जल्दबाजी में नजर आ रहे हैं। सड़कों को खाली कराने और तमाम निर्माण (कोलकाता के प्रतिष्ठित हॉग मार्केट सहित) को ढहाने के लिए बुलडोजर भेज दिए गए। सरकारी कर्मचारियों के मुंह पर ताला (गैग ऑर्डर) जड़ दिया गया। रेलवे प्लेटफार्मों से फेरीवालों को निकाल बाहर किया गया। वहीं, गर्ग चटर्जी जैसे मुखर आलोचक को सलाखों के पीछे भेज दिया गया। ईद से पहले और उसके बाद भी गौकशी को काबू करने के लिए 'पश्चिम बंगाल पशु हत्या नियंत्रण अधिनियम, 1950' को लागू और क्रियान्वित कर दिया गया। संदिग्ध अवैध बांग्लादेशियों को रखने के लिए 'होल्डिंग सेंटर' बनाए गए जो दरअसल 'डिटेंशन कैंप' ही हैं। (ताजा जानकारी के मुताबिक, 12 बंदियों को मुर्शिदाबाद और मालदा के आश्रय स्थलों में शिफ्ट किया गया है।) कांटेदार तारों की बाड़ लगाकर 'सीमा सुरक्षा को मजबूत करने' के लिए बीएसएफ (सीमा सुरक्षा बल) को कई एकड़ जमीन सौंप दी गई।

भारत-बांग्लादेश सीमा को सील करना भाजपा के चुनावी वादों का हिस्सा था। इसके जरिये पार्टी पश्चिम बंगाल में बांग्लादेशी मुसलमानों की अवैध घुसपैठ के अपने नैरेटिव को पुख्ता करना चाहती है, जिसके बारे में उसका दावा था कि इससे राज्य की जनसांख्यिकी बदली जा रही है। इसी तर्क को एसआईआर का भी आधार बनाया गया, जिसके तहत आखिरकार 34 लाख लोगों के नाम मतदाता सूची से काट दिए गए। भाजपा ने यह चुनाव 30 लाख वोटों के अंतर से जीता है।

कोलकाता के संभ्रांत वर्ग और समझौतापरस्त मीडिया ने भाजपा के इन कदमों को हाथों-हाथ लिया और इसकी व्याख्या टीएमसी के भ्रष्टाचार और तुष्टिकरण के तंत्र को ध्वस्त करने के जरूरी कदम के रूप में किया। भाजपा के मंझोले स्तर के नेताओं का कहना है कि यह सब पार्टी के नए और उभरते जनाधार को एकजुट करने की एक जरूरी कवायद का हिस्सा है।

हालांकि विधानसभा में विजेता पार्टी का प्रचंड बहुमत तब कुछ फीका दिखाई देता है, जब इसे उसे मत प्रतिशत की रोशनी में देखा जाता है- टीएमसी के 40.8 फीसद के मुकाबले भाजपा को 45.84 फीसद वोट मिले। सच तो यह है कि मतदाता सूची से 34 लाख नाम काटे जाने के बावजूद, पश्चिम बंगाल के 6.5 करोड़ मतदाताओं में से भाजपा के पक्ष की तुलना में उसके खिलाफ अधिक वोट पड़े हैं। जाहिर है, भाजपा विरोधी इन मतदाताओं का बड़ा हिस्सा अब भी टीएमसी के साथ है। यह वोट बैंक, सीपीएम (4.45 फीसद), कांग्रेस (2.97 फीसद) और अन्य (5.94 फीसद) के साथ मिलकर, 'विपक्षी जमीन' की रूपरेखा तय करता है और जिसपर काबिज होने के लिए राजनीतिक दलों में होड़ मच गई है।

*

चौथी बार सत्ता में वापसी की उम्मीदों के साथ चुनाव में उतरी टीएमसी, चुनावी नतीजों के महीने भर के भीतर ही अप्रासंगिक हो जाने के प्रत्यक्ष खतरे का सामना कर रही है। करीब सात फीसद वोटों के नुकसान ने उसे विपक्ष में बिठा दिया। पीछे मुड़कर देखें तो दीवार पर लिखी इबारत बिल्कुल साफ थी। और अब टीएमसी के बिखरने के शुरुआती संकेत भी सामने आने लगे हैं।

अभिषेक बनर्जी के खिलाफ खुली बगावत देखने को मिल रही है। 6 मई को ममता द्वारा चुनाव बाद की रणनीति पर चर्चा के लिए बुलाई गई बैठक से लगभग दस विधायक कन्नी काट गए। नगर निगम और अन्य निर्वाचित निकायों के पार्षदों के इस्तीफे की झड़ी लग गई है। कई विधायकों के कांग्रेस या सीपीएम से संपर्क साधने की खबरें आ रही हैं। वहीं, टीएमसी विधायकों के भाजपा में शामिल होने को लेकर भी अटकलों का बाजार गर्म है।

26 मई को, सांसद काकोली घोष दस्तीदार ने छह टीएमसी विधायकों के साथ शुभेंदु अधिकारी द्वारा बुलाई गई प्रशासनिक बैठक में हिस्सा लिया। (यह कदम उन्होंने टीएमसी के संसदीय मुख्य सचेतक के पद से उन्हें हटाए जाने के बाद उठाया।) काकोली पार्टी के अपने सभी पदों से इस्तीफा दे चुकी हैं। कई टीएमसी विधायकों का मानना है कि ममता और उनकी मंडली के इर्द-गिर्द अत्यधिक केन्द्रीकरण के कारण पार्टी का संगठनात्मक ढांचा कमजोर हुआ है। जो नेता कभी स्थानीय स्तर पर मजबूत पकड़ रखते थे, हार के बाद खुद को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। कुछ को जांच एजेंसियों का डर है, तो कुछ को प्रासंगिकता खोने का।

विधानसभा में भाजपा का प्रचंड बहुमत तब फीका दिखता है, जब इसे मत प्रतिशत की रोशनी में देखते हैं। टीएमसी के 40.8 के मुकाबले भाजपा को 45.84 फीसद वोट मिले। मतदाता सूची से 34 लाख नाम हटने के बावजूद, भाजपा के पक्ष की तुलना में उसके खिलाफ अधिक वोट पड़े

शुभेंदु अधिकारी के मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के तुरंत बाद बुलडोजर नजर आने लगे, जिसके बाद तोड़फोड़ को लेकर बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए

सवाल यह है कि क्या पश्चिम बंगाल में कोई मजबूत विपक्ष मौजूद है। हां, तो उसकी तस्वीर कैसी है?

राजनीतिक विज्ञानी रनबीर समद्दार बताते हैं, 'कई वजहों से गैर-भाजपा वोट शेयर में लगातार गिरावट आई है, खासकर 2021 के चुनावों के बाद से। गैर-टीएमसी विपक्षी दलों का ग्राफ भी इसी तरह नीचे गिरा है, हालांकि वे इस मुगालते में जी रहे हैं कि ऐसा कुछ नहीं हुआ है।'

समद्दार दो ऐसी खामियों की ओर भी इशारा करते हैं जो एक मजबूत विपक्ष की राह में रोड़ा बन सकती हैं। पहली है- एक समानांतर एजेंडा तय करने में नाकामी। 2016 में, टीएमसी 'कन्याश्री' या 'सबुज साथी' जैसी योजनाएं शुरू करने में कामयाब रही थी, जिनसे समाज कल्याण की योजनाओं को पेश करने के तरीके में एक बड़ा बदलाव देखने को मिला। वहीं, 2021 में 'द्वारे सरकार' अभियान के 'पाड़ाय समाधान' हिस्से ने शासन की अंतिम व्यक्ति तक पहुंच की नई परिभाषा गढ़ी थी।

अगर 2026 में टीएमसी जीत जाती, तो वह क्या-कुछ नया लेकर आती? शायद 'लक्ष्मीर भंडार' योजना के तहत 1,500 रुपये की जगह 1,700 रुपये, और 'स्वास्थ्य साथी' के तहत 5 लाख रुपये के बजाय 7 लाख रुपये। इसके भ्रष्टाचार और अवैध वसूली का जाल शायद बदस्तूर जारी रहता। विपक्ष के रूप में टीएमसी आज एक समानांतर एजेंडा तय करने की स्थिति में नहीं है। ऐसा इसलिए नहीं है कि वह चुनाव हार गई है, बल्कि इसलिए है क्योंकि उसके पास नए विचारों का अकाल पड़ गया है। सच तो यह है कि अपनी संदिग्ध 'आगे राम, पोरे बाम' (पहले राम, फिर वाम) की रणनीतिक लाइन पर चलने के बावजूद, यह सीपीएम ही है जिसने हॉकरों के मुद्दे पर आंदोलन करके और बेदखली से पहले उनके पुनर्वास की मांग उठाकर, सड़कों से लेकर सोशल मीडिया तक विपक्षी स्पेस को जिंदा रखा है।

दूसरी बाधा यह है कि पश्चिम बंगाल में एक बार चुनकर सत्ता में आने के बाद सरकारें उतनी जल्दी-जल्दी नहीं बदलतीं, जितनी कि कर्नाटक, केरला या राजस्थान जैसे राज्यों में। समद्दार ने 'संडे नवजीवन' से बातचीत में कहा, 'ऐसा इसलिए है क्योंकि पश्चिम बंगाल में विधायी राजनीति, सड़क की राजनीति के साथ बुनियादी तौर पर गुंथी हुई है। नतीजतन, किसी एजेंडे के साथ सत्ता में आने वाली पार्टी को बदलना मुश्किल हो जाता है।' इस संदर्भ में देखें तो, टीएमसी के भ्रष्टाचार और उसकी शासन संबंधी विफलताओं का बार-बार राग अलापना, किसी भी वैकल्पिक एजेंडे को पनपने से रोकने की भाजपाई 'इकोसिस्टम' की एक पुरजोर कोशिश है।

इन सबके बावजूद, भाजपा भी लड़खड़ाती नजर आ रही है। सत्ता की बागडोर संभालने के बीस दिन बाद भी, वह कैबिनेट की घोषणा नहीं कर पाई है। टीएमसी से छिटके नेताओं की भीड़ को पार्टी में आने से रोकने के लिए, भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष समिक भट्टाचार्य ने शुरू में ही ऐलान किया था कि टीएमसी कार्यकर्ताओं के लिए उनकी पार्टी के दरवाजे बंद हैं। हालांकि, भट्टाचार्य को अपना रुख बदलने में महज दस दिन लगे, जब उन्होंने कहा कि भाजपा 'अच्छे तृणमूल कार्यकर्ताओं' का स्वागत करेगी। उनका यह बयान पार्टी के मौजूदा ढांचे में जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं (भीड़ जुटाने वालों) और नेताओं की कमी की ओर इशारा करता है।

गौकशी को काबू करने की उसकी नीति उलटी पड़ गई है। मुसलमानों द्वारा गायें न खरीदने के फैसले से हिन्दू पशुपालकों की आजीविका पर असर पड़ा है। गैग ऑर्डर और महंगाई भत्ते की किस्तों पर रोक ने सरकारी कर्मचारियों को आक्रोशित कर दिया है। क्या ये मुद्दे विपक्ष के लिए वैकल्पिक एजेंडे की बुनियाद बन सकते हैं?

फिलहाल, अभी कुछ भी कहना जल्दबाजी होगा। भाजपा का विधानसभा में तो पूरा दबदबा है, लेकिन सड़कों पर नहीं। टीएमसी खुद को बिखरने से बचाने और एकजुट रखने के लिए संघर्ष कर रही है। दूसरी ओर, कांग्रेस-वामपंथी खेमा अपने पैर जमाने के लिए जमीन तलाश रहा है। आगे क्या सूरत उभरकर सामने आएगी? देखते रहिए, क्या होता है। ■

इनपुट- कुणाल चटर्जी और गौतम भट्टाचार्य

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

गौरक्षा और गणतंत्र

जयदीप हार्दिकर

भारत की पशु अर्थव्यवस्था गहरे विरोधाभास से ग्रसित है। जो सरकार गाय को पवित्र मानती है, लेकिन पशुओं का व्यापार करने वालों पर होने वाले हिंसक हमलों को रोकने में नाकाम रहती है, वही दुनिया के सबसे बड़े गोमांस निर्यात उद्योगों में से एक को चलने देती है और इसके निर्यात से अरबों कमाती है। सरकार ग्रामीण भारत की रक्षा का दावा करती है, लेकिन किसानों, व्यापारियों, चमड़ा कारखानों, ट्रांसपोर्टरों और चमड़ा श्रमिकों को जोड़ने वाली आर्थिक कड़ी को अस्थिर कर देती है। हाल ही में, ईद-उल-अजहा से ऐन पहले पश्चिम बंगाल में यह विरोधाभास बड़ी स्पष्टता से सामने आया।

शुभेंदु अधिकारी के पदभार संभालने के फौरन बाद, बंगाल की भाजपा सरकार ने नियमों को सख्त कर दिया; 14 साल से कम उम्र के मवेशियों की हत्या पर प्रभावी रूप से रोक लगा दी गई, जब तक कि उन्हें प्रजनन या काम के लिए अयोग्य प्रमाणित न कर दिया जाए। कलकत्ता हाईकोर्ट ने इस आदेश पर रोक लगाने से इनकार करते हुए कहा कि गाय की बलि देना ईद के अनुष्ठानों का जरूरी हिस्सा नहीं।

उत्पीड़न, जब्ती और सांप्रदायिक रूप से निशाना बनाए जाने के खौफ के बीच, बंगाल के पशु बाजारों की रिपोर्टें बताती हैं कि मुस्लिम पशु व्यापारी और खरीदार बेहद सतर्क हैं। वे न केवल पशुपालकों को अपने पशु को हत्या के लिए बेचने से रोक रहे हैं, बल्कि वे बिक्री करने वालों को मना भी कर रहे हैं। इसके अलावा, हिन्दू पशुपालकों ने कथित तौर पर शिकायत की है कि कम मांग से कीमतें गिर रही हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्थाएं बाधित हो रही हैं। पश्चिम बंगाल के कुछ पशु बाजारों में खरीदार नहीं। ईद के लिए गायों को पालने-पोसने में पैसा लगाने के बाद, कई किसानों को कर्ज में डूबने का डर है। हिन्दू किसानों और मुस्लिम पशु व्यापारियों की आपसी निर्भरता पर टिकी अर्थव्यवस्था पर स्वयंभू गौरक्षकों के खौफ का साया है। इस बीच, मांस निर्यात का कारोबार खूब फल-फूल रहा है।

अरबों डॉलर का विरोधाभास

भारत में आधिकारिक तौर पर गोमांस के निर्यात पर रोक है। लेकिन भैंस का मांस जिसे दुनिया भर में 'कैराबीफ' के नाम से बेचा जाता है, भारत के सबसे बड़े कृषि निर्यात क्षेत्रों में एक है। एपीडा (कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण) के पशु उत्पाद निर्यात डेटाबेस के मुताबिक, भारत ने 2024-25 में 4 अरब डॉलर का 12.5 लाख मीट्रिक टन भैंस मांस निर्यात किया; यह पशु उत्पादों के कुल निर्यात का 80 फीसद है।

हाल ही में लोकसभा में एक सवाल के जवाब में बताया गया कि भारत में एपीडा रजिस्टर्ड 94 एक्सपोर्ट-ग्रेड बूचड़खाने हैं, जो उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों में हैं। बीफ की राजनीति यह छिपा देती है कि हमारी एक्सपोर्ट इंडस्ट्री में ज्यादातर भैंस का मांस होता है, न कि गाय का। इसी अस्पष्टता की वजह से, मवेशियों की ढुलाई पर बने डर के माहौल में भी निर्यात अर्थव्यवस्था फल-फूल रही है।

पिछले एक दशक में 'गौ-रक्षा के नाम पर हिंसा' अहम सामाजिक घटना बन गई है। पत्रकारों, मानवाधिकार समूहों और शोधकर्ताओं के आंकड़ों से पता चलता है कि गाय से जुड़ी भीड़ हिंसा ज्यादातर 2014 के बाद हुई, जिनमें खास तौर पर मुसलमानों को निशाना बनाया गया। यह साल अहम है। तभी नरेन्द्र मोदी केन्द्र की सत्ता में आए थे। 2017 में, रॉयटर्स ने रिपोर्ट दी थी कि 2010 से 2017 के मध्य तक गाय से जुड़ी हिंसा में 28 लोग मारे गए जिनमें 24 मुसलमान थे। इस हिंसा ने पशुधन अर्थव्यवस्था को बदल दिया।

टूटी ग्रामीण शृंखला

कई पीढ़ियों से, ग्रामीण भारत में एक चक्रीय पशुधन अर्थव्यवस्था थी। किसान बूढ़े या अनुत्पादक पशुओं को व्यापारियों को बेचते और व्यापारी बूचड़खानों और मांस प्रसंस्करणकर्ताओं को पशु आपूर्ति करते। खालें चमड़ा कारखानों में जातीं और हड्डियां, चर्बी वगैरह सहायक उद्योगों तक। बूढ़े पशुओं को बेचने से किसानों को बीज खरीदने, ऋण चुकाने या खराब कृषि मौसम में गुजारा करने की नकदी मिलती थी। गौरक्षा हिंसा ने इस श्रृंखला को बाधित किया जिससे किसान संकट के क्षणों में असुरक्षित हो गए।

देशभर में गौरक्षा के नाम पर हिंसा बढ़ी है- उन भाजपा शासित राज्यों को छोड़कर जहां राजनीतिक हितों के लिए गोमांस खाने की इजाजत है। खैर, हिंसा से चक्रीय अर्थव्यवस्था लड़खड़ाने लगी है। ढुलाई करने वाले रात में मवेशी नहीं ले जाते। व्यापारी राजमार्गों पर हमलों से डरते हैं। कई राज्यों में किसान बूढ़े मवेशियों को छोड़ देते हैं क्योंकि उन्हें बेचना जोखिम भरा है। नतीजा यह है कि आवारा पशुओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई है, जो खड़ी फसलों को नष्ट कर रहे हैं, खासकर उत्तर प्रदेश में।

भारत की जानी-मानी पशु वैज्ञानिक डॉ. चंदा निंबकर का तर्क है कि महाराष्ट्र में गोहत्या पर पाबंदी ने पशुधन अर्थव्यवस्था को बिगाड़ दिया। मराठी दैनिक 'लोकसत्ता' में लिखे लेख में उन्होंने मवेशियों की बिक्री और हत्या पर लगे प्रतिबंध को हटाने की अपील की। उनका कहना है, 'यहां तक कि भैंसों का व्यापार करने वालों को भी अब 'गौरक्षक' निशाना बना रहे हैं... जिससे छोटे पशुपालकों का सीधा नुकसान है।'

वह सही कह रही हैं। दो साल पहले, महाराष्ट्र में लगातार हमले झेल रहे कुरैशी व्यापारियों ने राज्य के सभी बड़े बाजारों में मवेशी व्यापार का बहिष्कार किया था। नर बछड़ों और भैंसों की कीमतें गिर गईं, जिससे किसानों में रोष भर गया। बिक्री तभी शुरू हुई जब सरकार ने भरोसा दिया कि व्यापारियों को नुकसान नहीं पहुंचेगा। आज तक, हालात सामान्य नहीं हो पाए। आर्थिक रूप से पिछड़े सूखाग्रस्त इलाकों पर पशु व्यापार में बाधा का सबसे बुरा असर पड़ा है; इसने छोटे किसानों की आर्थिक मुश्किलें बढ़ा दी हैं।

डॉ. निंबकर का तर्क है कि सरकारें भीड़भाड़ वाली गौशालाओं को सब्सिडी देती हैं, जबकि किसानों को उन पशुओं के मामले में आर्थिक आजादी नहीं देतीं जो किसी काम के नहीं रहे। वह कहती हैं कि विडंबना है कि महाराष्ट्र में 'गौरक्षा' की जोरदार राजनीति के बावजूद, देसी गायों और बैलों की आबादी लगातार घट रही है; वहीं बकरियों की आबादी- जो ज्यादा आजाद और लचीले बाजार से जुड़ी है- तेजी से बढ़ी है।

सत्ताधारी शासन द्वारा संरक्षित 'गौरक्षा' गौ-राजनीति के मूल में छिपे एक बुनियादी विरोधाभास को उजागर करती हैः संरक्षण के नाम पर बनाए गए कानून, असल में पशुधन के संरक्षण और ग्रामीण आजीविका, दोनों को कमजोर करते हैं।

भारत के चमड़ा उद्योग से ज्यादा साफ तरीके से यह विरोधाभास शायद ही कहीं दिखे; यह उद्योग चमड़े के लिए पशु-हत्या से जुड़ी अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। यदि पशु-हत्या, उनके परिवहन और पशु-बाजारों में कोई बाधा आती है, तो चमड़ा क्षेत्र को इसका झटका फौरन महसूस होता है।

1950 में ही केन्द्र सरकार ने राज्यों को चेतावनी दी थी कि जानवरों की हत्या पर पूर्ण रोक से टैनिंग उद्योग और निर्यात को नुकसान होगा। आज वह चेतावनी सच साबित हुई है। भारत का चमड़ा उद्योग प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से लगभग 40-45 लाख लोगों को रोजगार देता है; इनमें बड़ी संख्या में दलित और मुसलमान हैं, जो मुख्य रूप से टैनिंग, चमड़े की प्रोसेसिंग और जूते-चप्पल बनाने के काम में लगे हैं। अनुमानों के मुताबिक, जब घरेलू बाजार के मूल्य और निर्यात को मिला दिया जाए तो यह क्षेत्र सालाना लगभग 5 अरब डॉलर का योगदान देता है। वित्त वर्ष 2024-25 में, चमड़ा उद्योग की निर्यात कमाई 4.8-5.7 अरब डॉलर रही। घरेलू बाजार तो इससे भी बड़ा है। 2025 में, चमड़ा निर्यात परिषद ने अनुमान लगाया कि घरेलू चमड़ा और जूते-चप्पलों का बाजार करीब 19 अरब डॉलर का था। कानपुर, उन्नाव, चेन्नई, कोलकाता में चमड़ा उद्योग के प्रमुख केन्द्र, खाल की आपूर्ति पर निर्भर हैं। बंगाल चमड़ा-प्रसंस्करण के महत्वपूर्ण केंद्रों में एक है; कोलकाता और बंतला में भारत की कुल टैनिंग गतिविधियों का लगभग एक-चौथाई काम होता है। जहां औद्योगिक प्रगति पहले ही धीमी हो, वहां के चमड़ा उद्योग को कोई भी चोट जानलेवा हो सकती है।

जैसे-जैसे हत्या दर गिरी और मवेशियों के परिवहन में जोखिम बढ़ा, घरेलू चमड़े की आपूर्ति घटती गई। आर्थिक तर्क बेहद सरल हैः कम बिक्री से किसानों की अर्थव्यवस्था चरमराती है, हत्या में रुकावट से चमड़े की आपूर्ति घटती है, चमड़ा कारखानों का काम धीमा पड़ता है, निर्यात सुस्त होता है और श्रमिकों का रोजगार जाता है। और सबसे अधिक प्रभावित होने वाले लोग अक्सर वे होते हैं जो पहले से ही हाशिये पर हैं- मुस्लिम व्यापारी, दलित चमड़ा श्रमिक, परिवहनकर्ता और अनौपचारिक मजदूर।

बीफ अर्थव्यवस्था का मालिक कौन

भारत के भैंस मांस के सबसे बड़े निर्यातक हिन्दू-स्वामित्व वाली कंपनियां हैं; कुछ मुस्लिम चलाते हैं और कुछ मिश्रित कारोबारी परिवार। फिर भी, मवेशियों को लेकर सार्वजनिक चर्चा ने पूरे व्यापार को सांप्रदायिक बना दिया है। अफसोस है कि जहां नारे सांस्कृतिक सुरक्षा की दुहाई देते हैं, वहीं इसका असल नतीजा गरीबों के लिए आर्थिक बिखराव होता है।

चौराहे पर गणतंत्र

भारत की पशु-अर्थव्यवस्था में हमेशा से धर्म, जाति, आजीविका, खेती और व्यापार का पेचीदा ताना-बाना रहा है। लेकिन मोदी सरकार के दौर में, यह राष्ट्रवाद का अखाड़ा भी बन गया।

वही राज्य जो निर्यात-उन्मुख भैंस के मांस के उत्पादन को बढ़ावा देता है-क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा मिलती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सहारा- वही राज्य इस अर्थव्यवस्था को चलाने वालों को अपराधी करार दे रहा है। इसका बोझ उस किसान पर पड़ता है, जिसे अनुपयोगी जानवर को पालना पड़ता है; उस ट्रांसपोर्टर पर पड़ता है जिसे हाईवे पर रोका जाता है; चमड़ा-कारखाने के उस मजदूर पर पड़ता है जिसके पास कच्ची खाल नहीं होती; उस पशु-व्यापारी पर पड़ता है जो डर के मारे बाजार छोड़ देता है; और आपसी सहयोग से बंधे उन समुदायों पर पड़ता है जो एक-दूसरे पर अविश्वास करना सीख रहे हैं।

भारतीय राजनीति में गाय भले ही पवित्र बनी रहे, लेकिन इसके इर्द-गिर्द की अर्थव्यवस्था अपवित्र है। यह पहले से कहीं ज्यादा नाज़ुक और कहीं ज्यादा सांप्रदायिक हो चुकी है। ■

भारतीय राजनीति में गाय भले ही पवित्र बनी रहे, लेकिन इसके इर्द-गिर्द की अर्थव्यवस्था अपवित्र है

भारत के भैंस मांस के सबसे बड़े निर्यातक हिन्दू-स्वामित्व वाली कंपनियां हैं; कुछ को मुस्लिम चलाते हैं। फिर भी, पूरे व्यापार को सांप्रदायिक बना दिया गया है। अफसोस है कि जहां नारे सांस्कृतिक सुरक्षा की दुहाई देते हैं, वहीं इसका असल नतीजा गरीबों के लिए आर्थिक बिखराव होता है

जयदीप हार्दिकर नागपुर में रहने वाले वरिष्ठ पत्रकार हैं

मिलिए, मताधिकार वंचित इस 'वोटर' जमात से

किसी के कितने बच्चे हैं, इस आधार पर भी वोटर लिस्ट से नाम कट रहे। यूपी का एसआईआर तो यही कहता है

नंदलाल शर्मा

क्या किसी भारतीय नागरिक के 'छह या उससे ज्यादा' बच्चे हों, तो महज इस आधार पर उसका मताधिकार छिन सकता है? जवाब है, हां- क्योंकि वाराणसी कैंट के 35 साल के वोटर सोनू गिरी के साथ यही हुआ। 6 जनवरी 2026 को वोटर लिस्ट का ड्राफ्ट जारी होने के कुछ समय बाद, सोनू को चुनाव आयोग से नोटिस मिला। इसमें उनके 'छह या उससे ज्यादा' बच्चे होने पर जवाब मांगा गया था। अंतिम मतदाता सूची में सोनू गिरी का नाम नहीं था।

सोनू अकेले नहीं हैं। 'संडे नवजीवन' ने वाराणसी कैंट विधानसभा क्षेत्र के चार मतदान केन्द्रों- हमीदिया मदरसा, बजरडीहा (177); गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, अस्सी संगम (345); मरकज़ी मदरसा अंसारुल उलूम, काज़ीपुरा खुर्द (15); और कन्या प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय, संकुलधारा (228)- के 20 बूथों की सूचियों में पाया कि ऐसे आधारों पर बड़ी संख्या में नाम हटाए गए।

49 साल के गिरिजेश कुमार (अस्सी संगम) को भी नोटिस मिला, जिसमें 'दादा-दादी से उम्र का अंतर 40 साल से कम' और 'छह या उससे ज्यादा बच्चे होने' की वजह दर्ज थी। 38 साल के जितेंद्र मौर्य (संकुलधारा) को मिले नोटिस में 'नाम में गड़बड़ी' के साथ 'छह या उससे ज्यादा बच्चे' वाली वजह बताई गई।

अंतिम मतदाता सूची में सोनू, गिरिजेश, जितेंद्र सहित हटाए गए कई वोटरों को 'क्यू' कैटेगरी में रखा गया- जिसका मतलब था 'अयोग्य'। हटाए गए अन्य वोटरों को 'ई' (मृत), 'एस' (शिफ्टेड), 'आर' (दोबार/डुप्लीकेट), 'एम' (लापता) जैसे कोड दिए गए थे।

सोनू गिरी के बूथ हमीदिया मदरसा में आयोग ने 150 नाम हटाए, जिनमें 61 पुरुष और 89 महिलाएं थीं। कारणों में 'अंतिम एसआईआर के साथ मैपिंग न होना' (91 मतदाता) और 'छह या उससे ज्यादा बच्चे' (27 मतदाता) शामिल थे।

गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में 78 महिलाओं सहित 187 मतदाताओं के नाम कटे। कारणः 'मैप न होना' (102 मतदाता), 'दादा-पोते की उम्र में 40 साल से कम का अंतर' (40) और 'छह या उससे ज्यादा बच्चे' (20)।

काज़ीपुरा खुर्द में 114 मतदाताओं (56 महिलाएं) के नाम हटे; 103 नाम इसलिए हटाए गए क्योंकि 'अंतिम एसआईआर के साथ मैप नहीं किया जा सका'। कन्या प्राइमरी और अपर प्राइमरी गर्ल्स स्कूल में भी 57 नाम हटाए गए।

*

भारत निर्वाचन आयोग ने 28 जून 2025 को घोषणा की कि संविधान के अनुच्छेद 326 के तहत, 'सिर्फ 18 वर्ष से अधिक आयु के भारतीय नागरिक, जो किसी विधानसभा क्षेत्र के सामान्य निवासी हैं, ही मतदाता बन सकते हैं।'

यूपी का एसआईआर दिखाता है कि चुनाव आयोग ने मतदाता पात्रता के मानदंड ही बदल डाले हैं। 'छह या उससे अधिक बच्चे' वाले आधार पर सवाल लाज़मी है, कि आयोग ने तय कैसे किया कि किसी के कितने बच्चे हैं? फॉर्म में बच्चों की संख्या तो पूछी नहीं गई थी; सिर्फ आधार, ईपीआईसी और मोबाइल नंबर के साथ मतदाता के पिता/अभिभावक, माता और पति के नाम पूछे गए थे।

मेरठ दक्षिण में बीएलओ रहीं स्कूल टीचर ने नाम न बताने की शर्त पर कहा कि उनकी नजर में ऐसे मामले हैं, जिनमें माता-पिता और वोटर की उम्र के बीच 15 साल से कम के अंतर पर नाम हटे। हालांकि छह या उससे ज्यादा बच्चे वाली वजह से नाम हटने की उन्हें कोई जानकारी नहीं।

नौ साल यूपी के मुख्य चुनाव अधिकारी के तौर पर काम कर चुके डॉ. नूर मोहम्मद कहते हैं- "ऐसा नहीं हो सकता! भारत में वयस्क मताधिकार प्रणाली लागू है। गणना के दौरान दिया गया डेटा महज 'तार्किक विसंगतियों' के आधार पर खारिज नहीं हो सकता। पात्रता तय करने का एकमात्र आधार न्यूनतम आयु की शर्त है।" उन्होंने कहा कि बच्चों की संख्या या अन्य विसंगति वाली बात बेमानी है।

वरिष्ठ वकील श्याम दीवान ने 19 जनवरी को सुप्रीम कोर्ट में दलील दी, "ऐसे मापदंड के आधार पर ऐसी प्रोफाइलिंग, जिसे (आयोग ने) अभी-अभी गढ़ा है, अवांछनीय है। इसके लिए वैधानिक स्वीकृति कहां है? मतदाता सूची का संतान से क्या लेना-देना?"

आयोग के वकील की दलील थी कि पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु के रिकॉर्ड में ऐसे मतदाताओं की संख्या असामान्य रूप से ज्यादा मिली जिनके बच्चों की संख्या भी असामान्य रूप से ज्यादा थीः 4.59 लाख वोटरों के पांच से ज्यादा बच्चे थे, 2.06 लाख के छह से ज्यादा और 8,682 के 10 से ज्यादा। 'द प्रिंट' के अनुसार, आयोग का दावा तो यह भी था कि उसे 100 से ज्यादा बच्चे वाले वोटर भी मिले!

डॉ. नूर को यह सब बेतुका लगता हैः पूरी प्रक्रिया ही संदिग्ध थी और इसे दोबारा किया जाना चाहिए।

वह बताते हैं- "पहले, फार्म-6 में वोटर से सिर्फ उसकी उम्र पूछते थे; 18 साल से ज्यादा उम्र का कोई भी व्यक्ति रजिस्टर हो सकता था। रिकॉर्ड न होने पर परिवार या गांव के मुखिया का बयान ही पर्याप्त होता। आपत्ति पर जांच होती। विवाद में डॉक्टर की राय मायने रखती। मुझे एक मामला पता है, जिसमें दो भाई-बहनों की उम्र का फर्क सिर्फ तीन महीने दर्ज था।" अब जिस शिक्षक ने जन्म की तारीखें दर्ज की थीं, स्वाभाविक है कि उसका ध्यान कहीं और रहा होगा।

माता-पिता या दादा-दादी के साथ उम्र के अंतर पर उनका कहना है, "पिता के साथ 15 साल उम्र का अंतर दिखाना अपने आप में बेतुका है। क्या आयोग मान बैठा है कि अब बाल विवाह नहीं होते? ज्यादातर मामलों में, पिता और दादा की उम्र भी सही दर्ज नहीं होती।"

यूपी के सीईओ नवदीप रिणवा ने 10 अप्रैल को एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में दावा किया कि बिना उचित प्रक्रिया कोई नाम नहीं हटाया गयाः "कोई नाम ड्राफ्ट लिस्ट में था, लेकिन फाइनल लिस्ट से गायब है, तो मतलब यह कि या तो उस वोटर के खिलाफ फॉर्म 7 भरा गया, या ईआरओ ने नोटिस पर सुनवाई के बाद हटाया।"

उन्होंने बताया कि 1.04 करोड़ मतदाता इसलिए हटाए गए क्योंकि वे अपनी 'विरासत' मैप करने में नाकाम रहे, और 2.22 करोड़ मतदाताओं को 'तार्किक विसंगतियों' के कारण चिह्नित किया गया। 14 जनवरी 2026 से नोटिस भेजे गए और 27 मार्च तक सुनवाई पूरी की गई।

एसआईआर से पहले, यूपी में मतदाताओं की संख्या 15.44 करोड़ थी। मसौदा सूची में घटकर 12.55 करोड़ और अंतिम मतदाता सूची में 13.39 करोड़ रही।

रिणवा ने बताया कि 6 जनवरी के बाद 8,15,999 नाम हटे। 3,50,436 नोटिस का संतोषजनक जवाब नहीं दे पाए, 3,28,350 लोग गैर-हाजिर थे या अन्यत्र चले गए थे, 79,076 लोग कहीं और रजिस्टर्ड थे और 55,865 लोगों की मृत्यु हो चुकी थी। 2,269 लोगों के नाम इसलिए हटे क्योंकि वे भारतीय नागरिक नहीं थे या उनकी उम्र 18 साल से कम थी। उन्होंने इसपर कुछ नहीं कहा कि ड्राफ्ट लिस्ट के दौर में नाम कैसे हटे। एसआईआर ने यूपी में 2.05 करोड़ लोगों को मताधिकार से वंचित कर दिया है।

बंगाल के विपरीत, जहां न्यायिक अधिकारियों को तार्किक विसंगतियां सुलझाने में लगाया गया था और एक न्यायाधिकरण अब भी 27 लाख अपीलों पर काम कर रहा है, यूपी के हटाए गए वोटरों को लेकर कुछ भी साफ नहीं है। रिणवा ने कहा है कि प्रभावित मतदाता 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950' के तहत नाम हटने के खिलाफ अपील कर सकते हैं। पहली अपील मतदाता सूची प्रकाशित होने के 15 दिनों के भीतर जिला मजिस्ट्रेट के सामने दायर हो सकती है, और दूसरी जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के 30 दिनों के भीतर मुख्य निर्वाचन अधिकारी के सामने।

हालांकि, इसकी कोई खास उम्मीद नहीं है। ■

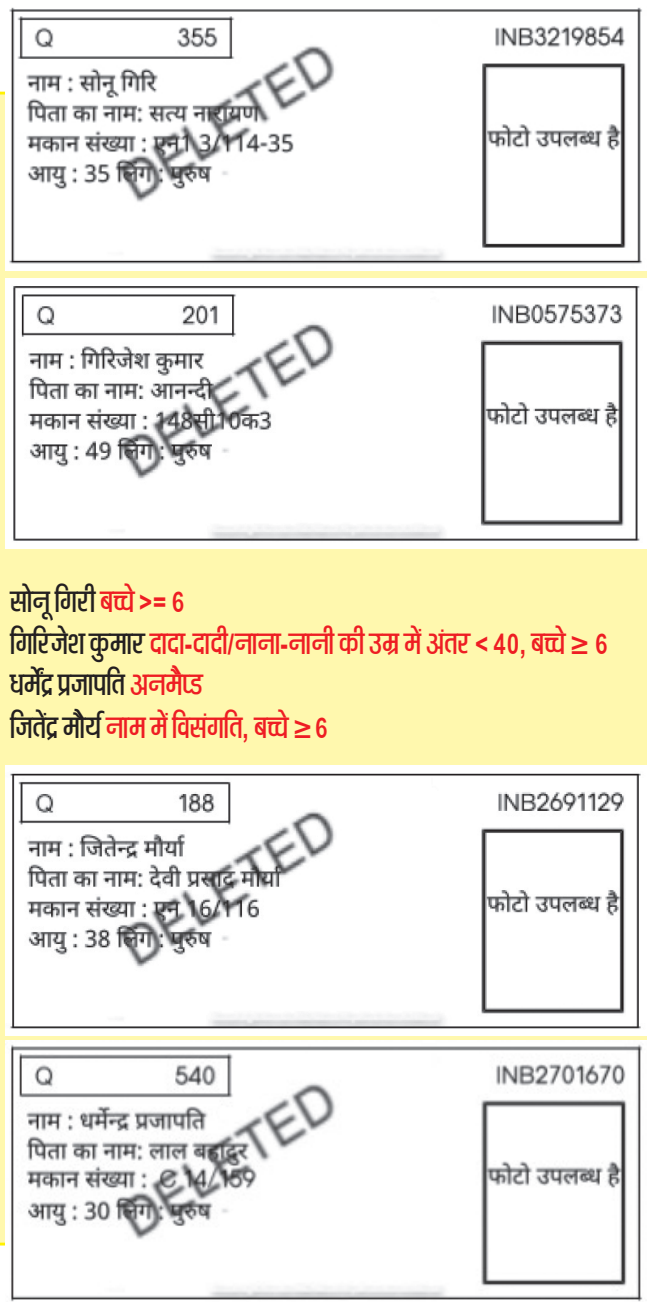

यूपी के सीईओ और चुनाव आयोग से हमारे ईमेल का जवाब मिलते ही हम इस रिपोर्ट को अपडेट करेंगे

संडे नवजीवन
रविवार, 31 मई, 2026 | www.navjivanindia.com

खौफ का कारण बने सिल्वरलाइन के लिए लगाए जा रहे यह पीले पत्थर प्रोजेक्ट रद्द कर दिए जाने से लोगों के लिए बड़ी राहत वाले साबित हुए हैं

'सिल्वरलाइन' और पीले पत्थर का वह खौफ

केरला की कांग्रेस नीत सरकार ने प्रोजेक्ट को रद्द करके लोगों को बड़ी राहत दी

के.ए. शाजी

अलाप्पुझा के कोझुवल्लूर गांव में 68 साल की विधवा के. थंकम्मा की रसोई के आंगन में एक सुबह एक पीला सर्वे पत्थर दिखा। उस छोटे से पत्थर का संदेश बेहद खौफनाक था- यह बेदखली का पूर्व संकेत था।

इन पत्थरों का इस्तेमाल विवादित 'सिल्वरलाइन' हाई-स्पीड रेलवे कॉरिडोर के प्रस्तावित रास्ते को चिह्नित करने के लिए किया गया था। पिनाराई विजयन के नेतृत्व वाली एलडीएफ सरकार ने इसे केरला के सबसे बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर सपने के तौर पर पेश किया था।

थंकम्मा और राज्य के उन जैसे अन्य हजारों लोगों के लिए वे पीले पत्थर खौफ, अपमान और अनिश्चितता के प्रतीक बन गए। पीढ़ियों से खड़े घरों पर ढहाए जाने का खतरा मंडराने लगा। जमीन की कीमतें धड़ाम से गिरीं। बैंक नए होम लोन देने में हिचकने लगे। परिवारों ने शादियां, घर की मरम्मत और निवेश टाल दिए, क्योंकि किसी को नहीं पता था कि बेदखली के नोटिस या बुलडोजर कब आ जाएंगे।

वी.डी. सतीशन के नेतृत्व वाली कांग्रेस-नीत यूडीएफ सरकार ने इस प्रोजेक्ट को रद्द कर दिया और इससे उन गांवों में राहत की लहर दौड़ गई जहां लोग सालों से खौफ के साए में जी रहे थे। अपनी रसोई के पास धुंधले पड़ते उस पीले निशान के पास खड़ी थंकम्मा ने इस रिपोर्टर से कहा, 'मैं रोज इस सोच के साथ उठती थी कि क्या मेरा घर बच पाएगा? मेरे पति ने खाड़ी देशों में सालों की मेहनत के बाद इसे बनाया था। जबसे पत्थर लगा, घर से सुकून चला गया। यहां तक कि इस रसोई में खाना बनाना भी तकलीफदेह हो गया था।'

उत्तर में कासरगोड से लेकर दक्षिण में तिरुवनंतपुरम तक, पीले रंग के सर्वे पत्थर लोगों के आंगनों, कुओं, धान के खेतों, रसोईघरों और बेडरूम तक में पहुंच गए थे। उन्होंने आम घरों को चिंता और बेचैनी के ठिकानों में बदल दिया था। अब इन पत्थरों का हटना केरला के हालिया इतिहास में सबसे नाटकीय राजनीतिक उलटफेरों में से एक है; साथ ही, यह राज्य की पूरी मशीनरी के समर्थन वाले एक विशाल इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट के खिलाफ लगातार चले जन-विरोध की दुर्लभ जीत भी है।

*

कोझिकोड शहर के पास थोट्टोलिथाझम में, पी.वी. शशिंद्रन ने कई साल यह देखते हुए बिताए कि कैसे कर्ज धीरे-धीरे उनके परिवार को निगल रहा है। उन्होंने एक छोटा-सा घर बनाने और अपनी तीन बेटियों की शादी के लिए कर्ज लिया था। उनकी देनदारियां 15 लाख रुपये से ज्यादा हो गई थीं। इससे निकलने का एकमात्र रास्ता अपनी पुश्तैनी जमीन का एक हिस्सा बेचना था। वह ऐसा करते, कि वे पीले पत्थर आ गए।

संभावित खरीदार रातों-रात गायब हो गए। कोई भी ऐसी जमीन नहीं खरीदना चाहता था जिसे जल्द ही अधिग्रहित किया जा सकता था। वित्तीय संस्थाएं भी ऐसी जमीन को छूने से हिचकिचा रही थीं। अब शशिंद्रन न तो जमीन को गिरवी रख सकते थे और न बेच सकते थे। वह कहते हैं, 'इस प्रोजेक्ट ने हमारी जमीन का एक इंच लिए बिना ही हमारी शांति छीन ली।'

कोझिकोड के पास मीनचंदा में, अब्दुल रजाक ने नए घर का निर्माण पूरा ही किया था कि अधिकारी उनकी जमीन के पास सर्वे के पत्थर लगाने पहुंच गए। ऐसे समय में जब उनके बेटे की शादी होने वाली थी, उनके घर में घबराहट फैल गई। मीनचंदा के ही रहने वाले के.वी. रजाक दिल के मरीज थे। वह सर्वे के खिलाफ एक प्रदर्शन में भाग लेने के दौरान अचानक गिर पड़े। पुलिसकर्मियों के सामने रोते-बिलखते बुज़ुर्गों की तस्वीरें पूरे केरला में वायरल हो गईं।

ऐसे परिवारों को लगा कि सरकार ने उन्हें बेसहारा छोड़ दिया है। अधिकारियों द्वारा रास्ते में संभावित बदलावों के संकेत दिए जाने के बाद भी, अनिश्चितता बनी रही। कई प्रभावित परिवारों के लिए यह अनिश्चितता विस्थापन से भी बदतर थी। लोगों ने अपने घरों की मरम्मत करवाना बंद कर दिया। प्रॉपर्टी के सौदे ठप पड़ गए। बुज़ुर्ग कहने लगे कि शायद स्थिति साफ होने से पहले ही वे इस दुनिया से चले जाएंगे।

बगावत और राहत

कोट्टायम जिले में चंगनास्सेरी के पास मदापल्ली विरोध का गढ़ बन गया। इस प्रोजेक्ट से यहां करीब 400 घरों के प्रभावित होने का अंदाजा था। गांव वाले फुल-टाइम विरोध प्रदर्शक बन गए। औरतें कामचलाऊ टेंट के अंदर सोतीं। कहीं अचानक सर्वे वगैरह न हो जाए, इस डर में बुज़ुर्ग रात में पहरा देते। इस आंदोलन ने केरला को तब झकझोर कर रख दिया जब एक प्रदर्शन के दौरान एक्टिविस्ट रोजलिन फिलिप को पुलिस घसीटकर ले जाने लगी, जबकि उनकी छोटी बेटी वहीं खड़ी रो रही थी।

*

जब अधिकारियों ने कोझुवल्लूर में थंकम्मा के किचन के सामने सर्वे का पत्थर लगाया, तो गांव वालों को लगा कि सरकार ने एक अनदेखी लाइन पार कर दी है। जब एक्टिविस्ट्स ने एक बार सर्वे का पत्थर हटा दिया, तो पुलिस ने उसे फिर लगा दिया, जिससे विरोध और बढ़ गया। गृहणी सिंधु जेम्स को जेल भेज दिया गया और बाद में उन्होंने हिरासत में शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का आरोप लगाया। इस घटना ने सिल्वरलाइन के खिलाफ आंदोलन को पिनाराई विजयन के दूसरे कार्यकाल में तानाशाही शासन के खिलाफ एक बड़े राज्यव्यापी आंदोलन में बदल दिया।

> सिल्वरलाइन प्रोजेक्ट लोगों की बात सुने बिना थोपा गया था। आम लोग अपने घरों और वेटलैंड्स को ऐसी परियोजनाओं के लिए कुर्बानि करने को तैयार नहीं थे जिनसे सिर्फ ठेकेदारों और नेताओं का फायदा होता हो

पर्यावरण एक्टिविस्ट के.वी. रविशंकर कहते हैं, 'सिल्वरलाइन एक खतरनाक विकास मॉडल था जिसे लोगों की बात सुने बिना या केरला के नाजुक पर्यावरण को समझे बिना थोपा गया था। विरोध से पता चला कि आम लोग अपने घरों और रोजी-रोटी या वेटलैंड्स को उन परियोजनाओं के लिए कुर्बान करने को तैयार नहीं जिनसे मोटे तौर पर ठेकेदार और नेताओं को फायदा होता हो।'

सिल्वरलाइन एक नैतिक और राजनीतिक सवाल बन गया कि क्या 'विकास' भारत के सबसे घनी आबादी वाले राज्यों में से एक में हजारों परिवारों को उजाड़ने को सही ठहरा सकता है? जब नई सरकार ने प्रोजेक्ट को रद्द करने का फैसला सुनाया, तो लोगों ने पटाखे फोड़े और मिठाइयां बांटीं। कई लोगों ने इसे लंबी मनोवैज्ञानिक घेराबंदी से आजादी बताया।

केरला को आ गया गुस्सा

पिनाराई सरकार ने 63,941 करोड़ की सिल्वरलाइन प्रोजेक्ट को इंफ्रास्ट्रक्चर सपना बताकर बेचना चाहा। इससे दक्षिण स्थित राजधानी तिरुवनंतपुरम और उत्तर के कासरगोड की ट्रेन से दूरी महज चार घंटे रह जाती।

यह रूट घनी आबादी वाली बस्तियों, वेटलैंड्स, धान के खेतों, नदियों, बैकवाटर्स और मडायिप्पारा, कडालुंडी एस्चुअरी और कोले वेटलैंड्स जैसे पर्यावरण के नजरिये से नाज़ुक इलाकों से होकर गुजर रहा था। इसके लिए पूरे केरला में लगभग 1,383 हेक्टेयर जमीन के अधिग्रहण की जरूरत थी।

पर्यावरणविदों ने आगाह किया था कि यह कॉरिडोर बाढ़, भूस्खलन और तटीय कटाव से पहले से ही जूझ रहे राज्य में गंभीर हाइड्रोलॉजिकल नतीजे पैदा कर सकता है। विशेषज्ञों ने कहा कि तटबंधों और ऊंचे कॉरिडोर के लिए बहुत ज्यादा ग्रेनाइट, मिट्टी और रेत की जरूरत होगी, जिससे नाज़ुक पश्चिमी घाट के इकोसिस्टम पर दबाव बढ़ेगा।

इसके वित्तीय असर को लेकर भी विवाद था। आलोचकों ने सवाल किया कि कर्ज में डूबा केरला इस प्रोजेक्ट का खर्च कैसे उठा सकता है, जबकि वह पहले ही कल्याणकारी योजनाओं, जलवायु आपदाओं और वित्तीय अस्थिरता से जूझ रहा है। कई विशेषज्ञों का तर्क था कि मौजूदा रेलवे नेटवर्क को इलेक्ट्रॉनिक सिग्नलिंग, ट्रैक डबलिंग और अपग्रेड करने से बड़े पैमाने पर विस्थापन और पर्यावरणीय नुकसान को टालते हुए भी यात्रा का समय काफी कम किया जा सकता है।

इस प्रोजेक्ट के विरोध ने पर्यावरणविदों, चर्च समूहों, वैज्ञानिकों, सिविल सोसाइटी संगठनों और आम लोगों के एकजुट कर दिया। इसमें पारंपरिक रूप से वाम समर्थक भी शामिल थे। इस तरह सिल्वरलाइन केरला की विकास राजनीति पर 'जनमत संग्रह' बन गया।

अन्य परियोजनाओं पर भी विवाद

पिनाराई विजयन सरकार के तहत यह अकेला इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट नहीं था जिसका कड़ा विरोध हुआ। ईएमसीसी डीप सी फिशिंग प्रोजेक्ट, जिससे पारंपरिक मछुआरे समुदायों की रोजी-रोटी को खतरा था, विझिंजम पोर्ट प्रोजेक्ट, पर्यावरण के लिहाज से नाजुक इलाकों में बड़े पैमाने पर खदानें, सुरक्षित जंगलों के आसपास के बफर जोन पर विवाद और तटीय मिनरल रेत (काली रेत) माइनिंग से जुड़े आरोपों ने हाल के चुनावों से पहले एलडीएफ सरकार को बचाव की मुद्रा में ला दिया था।

पदभार ग्रहण करने के कुछ ही दिनों बाद, सिल्वरलाइन प्रोजेक्ट को रद्द करने की घोषणा करते हुए, मुख्यमंत्री वी.डी. सतीशन ने कहाः 'हम लोगों की जिंदगी और पर्यावरण को बर्बाद करके विकास नहीं थोप सकते।... केरला को आधुनिक इंफ्रास्ट्रक्चर की जरूरत है। लेकिन हर प्रोजेक्ट में पर्यावरण का ध्यान रखना चाहिए और लोकतांत्रिक सलाह-मशविरा और आम लोगों की प्रतिष्ठा का सम्मान करना चाहिए।' ■

सभी फोटो: गेटी इमेजेज

नई दिल्ली में पेपर लीक के खिलाफ प्रदर्शन करते आईसा, दिशा, केवाईएस और एसएफआई के कार्यकर्ता। विरोध जताते एसएफआई के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करते पुलिसकर्मी। पटना में प्रदर्शन करते राजद और मुंबई में एनएसयूआई के कार्यकर्ता

टूटे सपनों की कहानी है नीट पेपर लीक कांड

मांग और आपूर्ति में असंतुलन और परीक्षा प्रणाली पर अत्यधिक दबाव निराशा और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले

रश्मि सहगल

भारत में परीक्षा संचालन से जुड़े विवाद केवल नकल घोटाले तक सीमित नहीं। ये एक गहरे भ्रष्टाचार और व्यवस्थागत खामियों को उजागर करते हैं, जो चिकित्सा शिक्षा और छात्रों के भविष्य के लिए खतरा हैं।

2016 से 2026 के बीच, बड़ी परीक्षाओं में 89 बार पेपर लीक हुए और 48 बार परीक्षा दोबारा करानी पड़ी। इनमें सबसे ताजा मामला नीट-यूजी 2026 का है जिसकी 21 जून को दोबारा परीक्षा होनी है। इसका असर 23 लाख छात्रों पर पड़ रहा है, जिन्हें एक बार फिर मानसिक-आर्थिक रूप से थका देने वाले मुश्किल दौर का सामना करना होगा। इसकी भी गारंटी नहीं कि इस बार कोई गड़बड़ी नहीं होगी। इसी बीच, सीबीएसई की 12वीं की परीक्षा के मूल्यांकन से जुड़ा घोटाला भारत की परीक्षा प्रणाली की पोल-पट्टी खोलकर रख देता है।

यह रिपोर्ट लिखे जाने तक नीट-यूजी परीक्षा देने वाले कम-से-कम चार छात्रों ने खुदकुशी कर ली थी। सीकर, लखीमपुर खीरी, दिल्ली और गोवा के इन युवाओं ने दोबारा परीक्षा की तैयारी के दबाव को झेलने के बजाय मौत को गले लगाना बेहतर समझा। करियर्स 360 के चेयरमैन महेश्वर पेरी का कहना है कि सबसे बड़ी दिक्कत मांग और आपूर्ति में भारी बेमेल की है। सरकारी मेडिकल कॉलेजों की 30,000 सीटों के लिए 23 लाख छात्र दो-दो हाथ करते हैं। सरकारी कालेजों में 5-6 लाख रुपये की फीस के मुकाबले, निजी मेडिकल कॉलेज 1 करोड़ से 5 करोड़ रुपये तक फीस लेते हैं। इससे ही उस हताशा, निराशा और मायूसी की वजह समझ आती है। पेरी कहते हैं, 'मां-बाप को प्रश्नपत्र के सेट के लिए 10-15 लाख रुपये खर्च करने में हिचक नहीं होती, बशर्ते उन्हें यकीन हो कि उनके बच्चों को किसी सरकारी मेडिकल कॉलेज में सीट मिल जाएगी।'

एलन करियर इंस्टीट्यूट के सीईओ नितिन कुकरेजा कहते हैं,'मेडिकल की डिग्री को आर्थिक रूप से सुरक्षित भविष्य की कुंजी माना जाता है। लेकिन किसी प्रतिष्ठित सरकारी संस्थान में दाखिला केवल नीट में अच्छा स्कोर करने पर ही मिल सकता है।' 'इंडिया टुडे' के नवीनतम 'बेस्ट कॉलेज सर्वे' के मुताबिक, सरकारी मेडिकल कॉलेज में सबसे कम मासिक फीस 1,628 रुपये है, जबकि निजी कॉलेज में यह 1.9 लाख रुपये प्रति माह है।

सीबीआई ने इस साल के नीट पेपर लीक मामले में अब तक जयपुर, गुरुग्राम, नासिक, पुणे, लातूर और अहिल्यानगर से 11 लोगों को गिरफ्तार किया है जिनमें कोचिंग सेंटर के डायरेक्टर, प्रिंसिपल और शिक्षक शामिल हैं। 2015 से अब तक पेपर लीक के 15 मामलों की जांच के बावजूद सीबीआई का रिकॉर्ड खासा निराशाजनक रहा है- अब तक सिर्फ एक मामले में सजा हुई। वहीं, प्रवर्तन निदेशालय 11 मामलों की जांच कर रहा है, लेकिन किसी में सजा नहीं दिला पाया है।

*

कोचिंग संस्थानों पर वर्षों से संदेह बना हुआ है। सैकड़ों ऐसे संस्थान छात्रों को लुभाने की होड़ में लगे हैं। इनमें से कई संस्थान और उनसे संबद्ध 'फर्जी स्कूल' प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से राजनेताओं से जुड़े हैं। पूर्व उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ ने कोचिंग केन्द्रों को 'प्रतिभाओं को हथियाने के केन्द्र' और 'प्रतिभाओं के लिए काले गड्ढे' बताते हुए उनकी निंदा की है, जो छात्रों की क्षमता को दबाने वाले अनुशासित समूह बनाते हैं।

राजनीति और कोचिंग सेंटर के इस गठजोड़ का खुलासा 2024 में तब हुआ, जब नीट-यूजी परीक्षा में टॉप करने वाले कई छात्र हरियाणा के बहादुरगढ़ स्थित एक ही परीक्षा केन्द्र के निकले। इनमें से छह के सीट नंबर एक ही क्रम में थे। जांच में पता चला कि इस परीक्षा केन्द्र का संचालन स्थानीय भाजपा युवा मोर्चा के प्रमुख की पत्नी कर रही थीं। परीक्षा के दिन प्रश्नपत्रों में गड़बड़ी हो गई थी, जिसके कारण परीक्षा शुरू होने में देरी हुई। इसके अलावा, बाद में यह भी सामने आया कि कुछ 'टॉपर्स' ने बोर्ड परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन नहीं किया था, जिससे उनके नीट के ऊंचे अंकों पर संदेह पैदा हुआ। 2024 में, सीकर के एक सेंटर से 67 छात्रों ने 720 में 720 नंबर पाए। पता चला कि इस सेंटर के राजस्थान के एक राजनेता से गहरे रिश्ते हैं। 2024 में एक और घोटाला गोधरा के एक अनजान 'जय जलाराम सेंटर' में सामने आया, जहां छात्रों द्वारा अधूरे भरे गए जवाबों को, उत्तर-कुंजिका जारी होने के बाद, परीक्षा खत्म होने पर शिक्षकों द्वारा पूरा किया गया था। गुजरात पुलिस ने पाया कि पूरे देश से कम-से-कम 26 छात्रों ने इसी सेंटर से नीट पास करने के लिए 10 से 66 लाख रुपये तक की रकम चुकाई थी।

शिक्षाविद अब सवाल उठा रहे हैं कि नीट, जेईई सिस्टम क्यों नहीं अपनाता जहां प्रश्न पत्र एक विशाल, एन्क्रिप्टेड बैंक से अपने आप तैयार होते हैं, जिसे कई सालों की कड़ी मेहनत से विकसित किया गया है, और उन्हें तभी डिक्रिप्ट किया जाता है जब उम्मीदवार अपनी परीक्षा शुरू करते हैं। जेईई साल में दो बार, 5-6 दिनों तक आयोजित किया जाता है और इसमें 14 लाख छात्र बैठते हैं। जेईई-मेन के लिए प्रश्न तैयार करने में आईआईटी के शीर्ष प्रोफेसर शामिल होते हैं। नीट के मामले में, न तो इंडियन मेडिकल बोर्ड और न ही प्रमुख मेडिकल कॉलेजों के प्रोफेसरों की प्रश्न तैयार करने में कोई भूमिका होती है।

> कोचिंग इंडस्ट्री का टर्नओवर सालाना 60,000 करोड़ से बढ़कर अब 1.5 लाख करोड़ रुपये हो जाने का अंदाजा है। इससे अनैतिक और आपराधिक हरकतों को बढ़ावा मिलने का खतरा रहता है, और इसी वजह से यह संकट गहराता जा रहा है

शिक्षामंत्री धर्मेंद्र प्रधान ने अब कहा है कि नीट भी जेईई की तरह पेन-एंड-पेपर मोड से हटकर कंप्यूटर-आधारित टेस्ट में बदल जाएगा। हालांकि, इसमें भी तकनीकी गड़बड़ियां और कभी-कभार किसी और के नाम पर परीक्षा देने के मामले सामने आते हैं, लेकिन नीट को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनकी तुलना में ये कम गंभीर होती हैं।

*

एनटीए के गठन से पहले, सीबीएसई ही संबंधित राज्य की परीक्षाओं के अलावा अखिल भारतीय प्री-मेडिकल/प्री-डेंटल (एआईपीएमटी) प्रवेश परीक्षाएं आयोजित करता था। एआईपीएमटी पास करने वाला छात्र केन्द्र सरकार के अधीन किसी भी मेडिकल कॉलेज में सीधे प्रवेश ले सकता था, और साथ ही हर राज्य के मेडिकल कॉलेज में गैर-निवासी छात्रों के लिए निर्धारित 15 प्रतिशत कोटे का लाभ भी उठा सकता था।

एनटीए को अमेरिका की 'एजुकेशनल टेस्टिंग सर्विस' (ईटीएस) मॉडल पर बनाया गया है, जो 'स्कॉलैस्टिक असेसमेंट टेस्ट' (एसएटी), 'अमेरिकन कॉलेज टेस्ट' (एसीटी) और 'ग्रेजुएट रिकॉर्ड एग्जामिनेशंस' (जीआरई) आयोजित करती है। हालांकि, ईटीएस के उलट, जिसमें 200 से ज्यादा स्थायी कर्मचारी हैं, एनटीए अपने दिल्ली कार्यालय में सिर्फ दो दर्जन स्थायी कर्मचारियों के साथ काम करता है।

कर्मचारियों की भारी कमी के कारण एजेंसी को पेपर-सेटिंग, वितरण और डेटा सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को निजी एजेंसियों को आउटसोर्स करना पड़ा है, जिससे पेपर लीक होने का खतरा बढ़ गया है। उच्च शिक्षा के पूर्व सचिव आर. सुब्रमण्यम का कहना है कि एनटीए को ऑनलाइन परीक्षाएं आयोजित करने के लिए बनाया गया था, और वह नीट जैसी परीक्षा कराने में सक्षम नहीं है; यह परीक्षा इतने विशाल पैमाने पर होती है कि इसके संचालन में ही दो लाख से अधिक लोगों की जरूरत पड़ती है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा संकाय की पूर्व डीन डॉ. अनीता रामपाल विश्वविद्यालयों के लिए साझा प्रवेश परीक्षा आयोजित करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है, 'बहुविकल्पीय प्रश्न किसी छात्र की समझ की गहराई नहीं आंकते। न ही यह आंकते हैं कि छात्र में एक अच्छा डॉक्टर बनने की क्षमता और संवेदनशीलता है या नहीं।' रामपाल बताती हैं कि कैसे एक ही केन्द्रीय नीट परीक्षा होने से राज्य बोर्डों की अहमियत कम हो गई है। कहती हैं, 'तमिलनाडु ने नीट का विरोध किया क्योंकि वे अपने गांवों में अच्छा काम करने वाले क्लिनिक चाहते थे, लेकिन यह परीक्षा उनके गांव के लड़कों को इसमें शामिल होने का मौका नहीं देती। मौजूदा परीक्षा ने ऐसे डॉक्टर पैदा किए हैं जो सिर्फ अपना फायदा देखते हैं, न कि ऐसे डॉक्टर जो लोगों की सेवा करते हैं।' वह एनटीए की छात्रों के प्रति दूरदर्शिता की कमी और शोध क्षमताओं के अभाव की भी उतनी ही आलोचना करती हैं- 'इसे एक वैधानिक निकाय बनाया जाना चाहिए जो संसद के प्रति जवाबदेह हो। इसे संवैधानिक दर्जा देने से एजेंसी को उन संबद्ध स्कूलों को सीधे दंडित करने का अधिकार मिलेगा जो ये परीक्षाएं आयोजित करते हैं और गलत गतिविधियों में लिप्त होते हैं। फिलहाल, वे एनटीए के प्रति जवाबदेह नहीं।'

नलसर यूनिवर्सिटी ऑफ लॉ के पूर्व वाइस-चांसलर फैजान मुस्तफा कहते हैं, 'हमारे जैसे बड़े देश में, कम-से-कम तीन, चार या पांच परीक्षाएं होनी चाहिए, ताकि अगर कोई एक में अच्छा न कर पाए, तो उसे दूसरी में बैठने का मौका मिले और उसका साल बर्बाद न हो।'

इस परीक्षा प्रणाली में आपराधिक तत्वों के घुसपैठ का डर बना हुआ है। शिक्षाविदों का कहना है कि इसमें बहुत बड़ी रकम शामिल है। 60,000 करोड़ रुपये के सालाना टर्नओवर से बढ़कर, कोचिंग इंडस्ट्री का टर्नओवर अब करीब 1.5 लाख करोड़ रुपये हो गया है। इससे अनैतिक और आपराधिक हरकतों को बढ़ावा मिलने का खतरा रहता है, जिससे यह संकट गहराता जा रहा है और इसका कोई आसान हल नजर भी नहीं आ रहा। ■

मतदाता सूचियों की सफाई या आबादी में बदलाव

बहस चुनावी प्रक्रिया तक सीमित नहीं। यह आबादी के बदलाव और राजनीतिक पहचान को लेकर व्यापक चिंता में बदल चुकी है

हरजिंदर

एसआईआर को लेकर पंजाब में चिंता बंगाल और बिहार से कहीं ज्यादा है

पंजाब के अगले विधानसभा चुनाव में बहुत बड़े दांव बिसात पर हैं। इस समय जब चुनाव बहुत दूर नहीं है, पश्चिम बंगाल का एक जुमला अचानक ही यहां की राजनीतिक भाषा में इस्तेमाल होने लगा है- क्या बंगाल का 'खेला' पंजाब में भी दोहराया जाएगा?

यहां यह जुमला सिर्फ मजाक की बात भी नहीं है। चुनाव आयोग द्वारा पंजाब में मतदाता सूचियों के विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एसआईआर की घोषणा से राज्य में यह जुमला संदेह, चिंता और बहस का सबब बन गया है। कागज पर यह एक नियमित चुनावी प्रक्रिया दिखाई देती है, लेकिन बंगाल के अनुभवों ने इसे विवादास्पद राजनीतिक मुद्दे में बदल दिया है।

हरियाणा, उत्तराखंड, हिमाचल, दिल्ली और चंडीगढ़ के साथ पंजाब को भी उस प्रक्रिया के दायरे में लाया गया है, जिसका आधिकारिक उद्देश्य मतदाता सूचियों से अनुपस्थित, कहीं और चले गए, डुप्लीकेट और मृतकों के नाम हटाकर उन्हें 'शुद्ध' करना बताया गया है। लेकिन पंजाब में शायद ही कोई राजनीतिक दल इसे केवल प्रशासनिक कवायद मान रहा हो।

सबसे पहला विवाद इसके समय को लेकर खड़ा हुआ है। पंजाब कांग्रेस अध्यक्ष और सांसद अमरिंदर सिंह राजा वड़िंग ने खुले तौर पर इस प्रक्रिया की जल्दबाजी पर सवाल उठाए हैं। वह कहते हैं कि आयोग विधानसभा चुनाव के बाद भी एसआईआर कर सकता था। उन्होंने यह भी कहा कि उत्तर प्रदेश और गोवा जैसे राज्यों में यह प्रक्रिया पंजाब से लगभग छह महीने पहले की गई थी। फिर पंजाब को मतदान से ठीक पहले इतनी कम समय-सीमा में क्यों रखा गया?

कांग्रेस ही नहीं, सत्तारूढ़ आम आदमी पार्टी और यहां तक कि शिरोमणि अकाली दल ने भी इसी तरह की चिंताएं जताई हैं। वैचारिक और चुनावी प्रतिद्वंद्विता से बंटे हुए राजनीतिक दल इस आशंका में एकजुट दिखाई दे रहे हैं कि पंजाब में वही राजनीतिक टेम्पलेट दोहराया जा सकता है, जो पहले बिहार और पश्चिम बंगाल में लागू किया गया था।

विपक्ष का आरोप है कि केन्द्र सरकार एक 'अनुकूल' चुनाव आयोग का इस्तेमाल मतदाता सूची में इंजीनियरिंग करके चुनावी नतीजों को प्रभावित करने के लिए कर रही है। बड़ा सवाल यह है कि पंजाब की आबादी का स्वरूप एसआईआर के असर को अन्य राज्यों की तुलना में कहीं ज्यादा जटिल बना देता हैं।

पंजाब के आबादी का बदलता स्वरूप राजनीतिक रूप से काफी संवेदनशील हैं। यह राज्य आबादी के एक अनोखे विरोधाभास के साथ जी रहा है। एक ओर पंजाबी युवाओं का लगातार विदेशों की ओर पलायन है, तो दूसरी ओर अन्य राज्यों से आए मजदूरों की बड़ी संख्या है, जो अब पंजाब की कृषि, निर्माण और औद्योगिक अर्थव्यवस्था को संभाले हुए हैं। इन दोनों प्रकार के प्रवास ने पिछले दो दशकों में पंजाब की सामाजिक और चुनावी संरचना को कई तरह से बदल दिया है।

मतदाता सूची का यह पुनरीक्षण 21 साल बाद हो रहा है। इन दो दशकों के दौरान पंजाब में काफी कुछ बदल गया है।जालंधर, मोगा, होशियारपुर और लुधियाना जैसे जिलों के पूरे गांवों ने बड़े पैमाने पर विदेश पलायन देखा है। साथ ही उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान से आए प्रवासी मजदूरों की बस्तियां शहरी और ग्रामीण आर्थिक केन्द्रों के आसपास तेजी से बसी हैं।

यहीं से एसआईआर प्रक्रिया राजनीतिक रूप से विस्फोटक क्षेत्र में प्रवेश करती है। पंजाब में सबसे बड़ी आशंका यह है कि एनआरआई बड़ी संख्या में अपना मतदान अधिकार खो सकते हैं। उन्हें आसानी से 'अनुपस्थित' या 'स्थानांतरित' की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह चिंता काल्पनिक नहीं है। विदेशों में रहने वाले अनेक पंजाबी रोजगार या शिक्षा के बावजूद अपने पैतृक गांवों में मतदाता पंजीकरण बनाए रखते हैं।

> पंजाब में सबसे बड़ी आशंका यह है कि एनआरआई बड़ी संख्या में अपना मतदान अधिकार खो सकते हैं। उन्हें आसानी से 'अनुपस्थित' या 'स्थानांतरित' की श्रेणी में रखा जा सकता है

आप सांसद मलविंदर सिंह कंग ने तर्क दिया है कि तमाम व्यवहारिक परिस्थितियों के कारण वे सत्यापन अभियानों के दौरान निजी तौर पर मौजूद नहीं हो सकते। उन्होंने तेज शिकायत-निवारण तंत्र और कानूनी सुरक्षा की मांग की है, ताकि अस्थायी अनुपस्थिति मतदाता सूची से हमेशा के लिए नाम हटने का कारण न बन जाए।

यह चिंता उन आंकड़ों पर आधारित है जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार, 2016 से 2021 की शुरुआत तक 9.84 लाख से अधिक पंजाबी विदेश चले गए। 2023 के बाद कनाडा और ब्रिटेन द्वारा आव्रजन नियम सख्त किए जाने के बावजूद पंजाब से बाहरी प्रवासन का रुझान अब भी मजबूत बना हुआ है।

छात्र-छात्राओं का पलायन इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। वर्ष 2022 में लगभग 1.36 लाख पंजाबी छात्र कनाडा गए। उस वर्ष कनाडा जाने वाले सभी भारतीय छात्रों में यह संख्या लगभग 60 प्रतिशत थी, जबकि भारत की कुल आबादी में पंजाब की हिस्सेदारी 2.5 प्रतिशत से भी कम है। कनाडा और ब्रिटेन में वीजा प्रतिबंध बढ़ने के बाद पंजाबी प्रवासन अब जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया और छोटे यूरोपीय देशों की ओर भी हो रहा है।

इससे एक राजनीतिक रूप से असहज आशंका पैदा होती है- पंजाब की मतादात सूची से काटे जाने वाले नामों की संख्या उत्तर प्रदेश, बिहार या पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों की तुलना में अनुपातिक रूप से काफी बड़ी हो सकती है। कुछ आलोचकों का कहना है कि इससे पंजाब के एक बड़े परंपरागत मतदाता आधार का सफाया हो जाएगा।

फिर वहां अन्य राज्यों से आने वालों की विशाल आबादी है, जो अब राज्य की अर्थव्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी है। धान की कटाई से लेकर फैक्टरी लाइनों और निर्माण स्थलों तक, प्रवासी मजदूर पंजाब की आर्थिक मशीनरी तक का हिस्सा बन चुके हैं।

समय के साथ पंजाब में अन्य राज्यों के प्रवासियों की संख्या विभिन्न अध्ययनों में 91.89 लाख से बढ़कर 1.37 करोड़ से अधिक बताई जाती है। पंजाब के कुल मतदाता आधार की तुलना में यह एक असाधारण आंकड़ा है।

इसके राजनीतिक निहितार्थ बेहद बड़े हैं। राजनीतिक विश्लेषक प्रो. मनजीत सिंह के अनुसार बड़ा सवाल यह नहीं है कि मतदाता सूची से कौन-से नाम हटाए जाते हैं, बल्कि यह है कि कौन-से नाम जोड़े जाते हैं। पंजाब में आने वाले अधिकांश प्रवासी उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान से आते हैं। ये वे राज्य हैं जहां भाजपा का राजनीतिक प्रभाव काफी मजबूत है। यह प्रभाव पंजाब में चुनावी लाभ में बदल पाएगा या नहीं, यह अभी अनिश्चित है, लेकिन यह आशंका ही राजनीतिक रूप से विस्फोटक बन चुकी है।

इसलिए बहस अब केवल चुनावी प्रक्रिया तक सीमित नहीं रही। यह आबादी के बदलाव और राजनीतिक पहचान को लेकर व्यापक चिंता में बदल चुकी है।

चुनाव आयोग एसआईआर को एक प्रशासनिक प्रक्रिया बताता है, जो मतदाता सूचियों की शुद्धता के लिए जरूरी है। इस तर्क को पूरी तरह खारिज करना कठिन है। लोकतंत्र को सटीक मतदाता डाटाबेस की आवश्यकता होती है। डुप्लीकेट और फर्जी प्रविष्टियां चुनावी वैधता को कमजोर करती हैं। लेकिन राजनीतिक रूप से ध्रुवीकृत माहौल में तकनीकी रूप से वाजिब प्रक्रियाएं भी वैचारिक रंग हासिल कर लेती हैं। फिलहाल पंजाब उसी मोड़ पर खड़ा है।

राज्य की राजनीति ऐतिहासिक रूप से पहचान, प्रवासन, कृषि संबंधी चिंताओं और केन्द्र के प्रति अविश्वास के इर्द-गिर्द घूमती रही है। एसआईआर इन चारों मुद्दों को एक साथ छूता है। कुछ लोगों के लिए यह गलत मतदाता सूचियों की सफाई है। दूसरों के लिए यह एक महत्वपूर्ण चुनाव से पहले पंजाब की चुनावी आबादी को दोबारा गढ़ने की कोशिश है। ■

फोटो : गेटी इमेजेज

प्रधानमंत्री ने भले ही कारपूलिंग की अपील की हो, लेकिन इसके पीछे की कड़वी सच्चाइयां कहीं ज्यादा ही जटिल होती हैं

कारपूल को कानूनी जामा पहनाने का वक्त

ऐसा सिर्फ इसलिए नहीं कि होर्मुज के पास कहीं कोई टैंकर अटक गया, बल्कि उत्सर्जन लक्ष्यों के लिए भी यह महत्वपूर्ण

हार्दिक मलिक और वेदांत चौधरी

मोटर वाहन अधिनियम, 1988 निजी (सफेद नंबर प्लेट) और परिवहन (पीले नंबर प्लेट) वाहनों के बीच स्पष्ट अंतर करता है। बिना परमिट के 'व्यावसायिक लाभ या भाड़े के लिए' इस्तेमाल की जाने वाली निजी कार पर जुर्माना लग सकता है और उसका पंजीकरण भी निलंबित किया जा सकता है। 2019 के संशोधन ने 'एग्रीगेटर' की एक वैधानिक श्रेणी बनाई और लाइसेंसिंग व्यवस्था शुरू की, लेकिन इसे राइड-हेलिंग (व्यावसायिक इस्तेमाल) के लिए तैयार किया गया था, न कि राइड-शेयरिंग (कारपूलिंग या निजी तौर पर सफर साझा करने) के लिए।

सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने 2020 में 'मोटर वाहन एग्रीगेटर दिशानिर्देश' जारी किए, जिसके बाद 2025 में इसका संशोधित संस्करण आया। इसमें ओला, उबर, रैपिडो और ऐसे अन्य प्लेटफॉर्म शामिल किए गए और इसमें सर्ज प्राइसिंग, ड्राइवरों के मुआवजे, बीमा और शिकायत निवारण से जुड़े विस्तृत नियम शामिल थे। हालांकि, इन दोनों में यात्रियों के बीच होने वाली, लागत-साझा करने वाली कारपूलिंग के लिए कोई व्यवस्था नहीं बनाई गई। नतीजा यह हुआ कि यह काम बिना किसी ठोस योजना के किया जा रहा है।

2023 के अंत में टैक्सी यूनियनों की लगातार लॉबिंग के बाद कर्नाटक के परिवहन विभाग ने 'ब्लाब्ला कार' और 'क्विक राइड' जैसे कारपूलिंग ऐप पर 'सफेद नंबर प्लेट' कारों के इस्तेमाल को गैर-कानूनी घोषित कर दिया, जिसके तहत राज्य के मोटर वाहन नियमों के तहत जुर्माना लगाया जा सकता है।

बेंगलुरु- जो भारत का सबसे व्यस्त (ट्रैफिक जाम वाला) शहर है, और जिसके बारे में भाजपा सांसद तेजस्वी सूर्या ने बताया है कि 1990 के बाद वहां गाड़ियों की संख्या साठ गुना बढ़ गई है- उससे उम्मीद की गई कि वह व्यस्त समय (पीक ऑवर्स) में जाम घटाने के बजाय टैक्सी ऑपरेटरों की कमाई को प्राथमिकता दे। महाराष्ट्र की एग्रीगेटर कैब्स पॉलिसी 2025 इसके उलट तरीका अपनाती है; यह कारपूलिंग को मान्यता देती है, ड्राइवरों के लिए हर हफ्ते हर यूजर के साथ 14 पूल ट्रिप की सीमा तय करती है, और शर्त रखती है कि किराया तय बेस रेट से ज्यादा न हो।

कुछ राज्य ऐसे ऐप चलने देते हैं, तो कुछ ऐसी गतिविधि को दंडित करते हैं। परिवहन 'समवर्ती सूची' का विषय है, लेकिन यह बेतरतीब व्यवस्था शक्तियों के किसी तर्कसंगत बंटवारे से ज्यादा, कानून बनाने से इनकार करने जैसा लगता है- जिसकी कीमत आम यात्रियों को चुकानी पड़ रही है।

यह पूरी स्पष्टता के साथ शाम 6 बजे नोएडा-ग्रेटर नोएडा एक्सप्रेस-वे पर दिखती है। 25 किलोमीटर लंबा यह कॉरिडोर रोजाना लाखों आईटी और कॉरपोरेट कर्मचारियों को ले जाता है, फिर भी सेक्टर 137 के आगे मेट्रो कवरेज कम हो जाता है, बस कनेक्टिविटी भी एक-सी नहीं रहती, और कॉरपोरेट शटल ज्यादातर बड़ी कंपनियों के कर्मचारियों के लिए उपलब्ध होती हैं। बाकी लोग किसी तरह काम चलाते हैं।

> व्यवस्थित कारपूलिंग व्यवस्था बिना वेरिफिकेशन की लिफ्ट वाली यात्रा से ज्यादा सुरक्षित होगी, जिसे कमजोर सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था की वजह से कई यात्रियों को हर दिन अपनाना पड़ता है

अनौपचारिक लिफ्ट लेना आम बात है। रात की शिफ्ट में आने-जाने वाली महिलाएं अक्सर अजनबियों पर निर्भर रहती हैं, क्योंकि उनके पास कोई भरोसेमंद विकल्प नहीं होता। वेरिफाइड प्रोफाइल, इन-ऐप ट्रैकिंग, महिला स्पेशल और महिला ड्राइवर के विकल्प, और एसओएस की सुविधा वाली व्यवस्थित कारपूलिंग व्यवस्था बिना वेरिफिकेशन की लिफ्ट वाली यात्रा से ज्यादा सुरक्षित होगी, जिसे कमजोर सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था की वजह से कई यात्रियों को हर दिन अपनाना पड़ता है।

किसी केन्द्रीय नियम न होने की वजह से ही ट्रैफिक पुलिस, 'व्यावसायिक लाभ या भाड़े के लिए' की अपने हिसाब से व्याख्या करके पूल राइडर्स पर जुर्माना लगा देती है; वे यह मान लेते हैं कि अजनबियों के बीच होने वाला कोई भी भुगतान, एक निजी वाहन को व्यावसायिक वाहन में बदल देता है। जब तक कानून खुद खर्च ईंधन के लिए किए गए योगदान और व्यावसायिक किराये के बीच फर्क नहीं करता, तब तक यह फर्क हाईवे पर मौजूद सिपाही ही तय करता रहेगा।

ईंधन की कीमतें शायद तात्कालिक वजह हों, लेकिन कारपूलिंग को रेगुलेट करने की बड़ी वजह जलवायु नीति और व्यापार में निहित है।

भारत का अपडेटेड 'नेशनली डिटरमिन्ड कंट्रीब्यूशन' (एनडीसी) देश को 2030 तक 2005 के स्तर से 45 फीसद कम उत्सर्जन स्तर हासिल करने और 2070 तक 'नेट-जीरो' उत्सर्जन का लक्ष्य पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध करता है। भारत की 'कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग स्कीम' (सीसीटीएस) का पहला चरण, जिसे 2023 में अधिसूचित किया गया था और जो 2026 तक लागू रहेगा, नौ ऊर्जा-गहन औद्योगिक क्षेत्रों को कवर करता है। इसके 'ऑफसेट मैकेनिज्म' के दायरे में परिवहन भी शामिल है, हालांकि 'शेयर्ड-मोबिलिटी क्रेडिट' के लिए कार्यप्रणाली अभी विकसित की जा रही है।

इस बीच, यूरोपियन यूनियन का नया एमिशन ट्रेडिंग सिस्टम, ईटीएस2- जिसे पिछले नवंबर में एक साल के लिए टाल दिया गया था, लेकिन अब जनवरी 2028 में शुरू करने के लिए निर्धारित किया गया है- पहली बार सड़क परिवहन और इमारतों के लिए ईंधन सप्लायरों पर 'अपस्ट्रीम कार्बन प्राइस' लगाएगा। इसमें एक सीमा होगी जो हर साल 5 फीसद से ज्यादा घटती जाएगी, ताकि 2030 तक उत्सर्जन में 42 फीसद की कमी लाई जा सके। मौजूदा ईयूईटीएस में भारी उद्योग और एविएशन शामिल हैं; ईटीएस2 वह तंत्र है जो असल में निजी कारों में जलने वाले पेट्रोल की कीमत तय करेगा।

भारत के सीसीटीएस को आखिरकार ईटीएस2 और एक 'कार्बन बॉर्डर एडजस्टमेंट मैकेनिज्म' के साथ तालमेल बैठाना होगा, जिसका दायरा भविष्य में और बढ़ सकता है। अगर ऐप के जरिये होने वाली कारपूल यात्राओं को सीसीटीएस ऑफसेट मैकेनिज्म के तहत एक योग्य गतिविधि के रूप में मान्यता मिल जाए, तो लाखों खाली सीटें 'क्लाइमेट एसेट्स' के तौर पर काम करना शुरू कर सकती हैं। इसके साथ ही, भारतीय परिवहन नीति भी अंतरराष्ट्रीय कार्बन बाजार के साथ जुड़ने के लिए बेहतर स्थिति में होगी, भले हम इसके लिए तैयार हों या न हों।

मोटर वाहन अधिनियम में एक अलग अध्याय-या एक स्वतंत्र 'शेयर्ड मोबिलिटी (कारपूलिंग) रेगुलेशन, 2026'- को कुछ कदम उठाने चाहिए।

सबसे पहले, इसे कमर्शियल राइड-हेलिंग और असली 'कॉस्ट-शेयर्ड कारपूलिंग' में एक साफ कानूनी फर्क करना चाहिए; इसके लिए, कारपूलिंग को 'प्रति किलोमीटर लागत-वसूली की सीमा', 'रोजाना और हफ्तेवार ट्रिप की ऊपरी सीमा' और 'सख्त नो-प्रॉफिट नियम' के जरिये परिभाषित किया जाना चाहिए। इन शर्तों के तहत चलने वाली सफेद नंबर प्लेट वाली कारों को कमर्शियल परमिट की जरूरतों से छूट मिलनी चाहिए।

दूसरा, कानून में 2025 की एग्रीगेटर गाइडलाइंस में पहले से मौजूद सुरक्षा उपायों को शामिल किया जाना चाहिए: केवाईसी और पुलिस वेरिफिकेशन, लोकेशन ट्रैकिंग, महिला यात्रियों के लिए विकल्प, इन-ऐप एसओएस फंक्शन और सर्टिफाइड ऐप सुरक्षा।

तीसरा, सरकारों को दिल्ली-मेरठ, मुंबई-पुणे और नोएडा-ग्रेटर नोएडा जैसे मुख्य रास्तों पर खास हाई-ऑक्यूपेंसी व्हीकल (एचओवी) लेन का पायलट प्रोजेक्ट चलाना चाहिए। 1969 से एचओवी लेन के मामले में अमेरिका का अनुभव; और पेरिस, ल्योन और ग्रेनोबल के आस-पास 'व्हाइट-डायमंड' लेन का फ्रांस में इस्तेमाल- जिसमें अकेले गाड़ी चलाने वालों पर भारी जुर्माना लगाया जाता है- बताता है कि आंशिक, और जरूरत के हिसाब से चालू होने वाले सिस्टम भी कम गाड़ियों से ज्यादा लोगों को पहुंचा सकते हैं।

अंत में, कानून को वेरिफाइड पूल ट्रिप्स को सीसीटीएस ऑफसेट मैकेनिज्म में शामिल करना चाहिए, जिससे एग्रीगेटर्स- और आखिरकार यात्रियों- को शेयर्ड मोबिलिटी में सीधा आर्थिक फासदा मिले। इसके विरुद्ध दिए गए तर्कों पर भी गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। लाइसेंस्ड टैक्सी और ऑटो ऑपरेटर्स की अपनी आजीविका को लेकर चिंता स्वाभाविक है। लेकिन प्रति किलोमीटर पर एक सख्त सीमा और ट्रिप की अधिकतम सीमा सुनिश्चित कर सकती है कि पूलिंग, किसी दूसरे नाम से चलाई जा रही बिना लाइसेंस वाली राइड-हेलिंग सेवा न बन जाए। महिलाओं की सुरक्षा के पैरोकार सही ही, कड़ी जांच-पड़ताल की मांग करते हैं; इसके लिए रेगुलेटरी ढांचा पहले से मौजूद है। राज्य सरकारें अपनी समवर्ती सूची के अधिकारों की रक्षा करती हैं, लेकिन एक ऐसा ढांचागत कानून बनाना जो राष्ट्रीय स्तर पर एक आधार तय करे, और साथ ही राज्यों को किराया और एचओवी लेन तय करने की अनुमति दे, संघीय संतुलन को बनाए रखेगा।

जिस बात का बचाव करना ज्यादा मुश्किल है, वह है मौजूदा व्यवस्थाः प्रधानमंत्री नागरिकों से कारपूल का आग्रह करते हैं, जबकि हाईवे पर कहीं कोई क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय (आरटीओ) उन्हें ऐसा ही करने पर जुर्माना लगा देता है।

दिल्ली सरकार की घोषणा, केरल द्वारा तय सीमाएं और कच्चे तेल की कीमतों में वैश्विक उछाल- इन सबने मिलकर एक समझदारी भरा केन्द्रीय कारपूलिंग कानून बनाने का आधार बना दिया है। इससे पहले कि होर्मुज जलडमरूमध्य के पास कहीं कोई और तेल टैंकर अटक जाए, यह काम पूरा कर लेना चाहिए। ■

हार्दिक मलिक और वेदांत चौधरी लॉ के असिस्टेंट प्रोफेसर हैं

अंदाजा लगाइए कि कौन फैसले नहीं ले रहा

शी-पुतिन शिखर सम्मेलन में ट्रंप के अमेरिका और शेष विश्व के लिए हैं कई संदेश

अशोक स्वैन

फोटो: गेटी इमेजेज

बीजिंग में ग्रेट हॉल ऑफ पीपुल में स्वागत समारोह के दौरान चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमिर पुतिन

डॉनल्ड ट्रंप के चीन से जाने के कुछ ही दिनों बाद जब व्लादिमीर पुतिन बीजिंग पहुंचे, शी जिनपिंग ने महज एक और शिखर सम्मेलन की मेजबानी नहीं की। उन्होंने एक भू-राजनीतिक संदेश दिया। ट्रंप इस भरोसे चीन आए थे, कि लेन-देन का दबाव नहीं भी चला, तो कम-से-कम व्यक्तिगत कूटनीति दुनिया को वॉशिंगटन की मर्जी के आगे झुका ही सकती है। शी ने पुतिन के बगल खड़े होकर इसका जैसा जवाब दिया, मानो ऐलान कर रहे हों कि एकछत्र अमेरिकी वर्चस्व का दौर अब अपने अंत के करीब है।

शी-पुतिन शिखर सम्मेलन एक सोची-समझी रणनीति का हिस्सा था। बहुध्रुवीय दुनिया पर एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करके, चीन और रूस ने ट्रंप की विदेश नीति की उस मुख्य धारणा को सीधी चुनौती दी, जिसके अनुसार अमेरिका अब भी वैश्विक व्यवस्था को परिभाषित कर सकता है, तय कर सकता है कि कौन से युद्ध वैध हैं, यह भी कि किसे दंडित किया जाना है, और दूसरों से यह उम्मीद कर सकता है कि वे उसकी बात मानेंगे ही।

ट्रंप के वैश्विक नजरिये ने अमेरिकी असर को लगातार जरूरत से ज्यादा आंका है। उन्होंने अमेरिका की इस क्षमता पर भरोसा किया है कि वह अन्य देशों- चीन, रूस, भारत, ईरान, यहां तक कि नाटो सहयोगियों को सहयोग करने या इसकी कीमत चुकाने को मजबूर कर सकता है। प्रतिबंध, टैरिफ, सैन्य हमले, दिखावटी शिखर सम्मेलन और 'ट्रुथ सोशल' पर दी गई धमकियां अब अमेरिका की रणनीति हैं। लेकिन जहां भारत जैसी कुछ ताकतों ने इस दादागिरी के आगे घुटने टेक दिए हैं, वहीं चीन, रूस और हाल ही में ईरान ने न सिर्फ इसका डटकर मुकाबला किया है बल्कि उनकी चाल सफलतापूर्वक नाकाम भी की है।

ये देश और उनका नेतृत्व ट्रंप की कमजोरियां आसानी से भांप लेते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि शी, ट्रंप का सामना लापरवाही से करते दिखे हों। बल्कि वह धीरे-धीरे अपनी पकड़ मजबूत करते जाते हैं। वह ट्रंप का शिष्टाचार के साथ स्वागत करते हैं, आर्थिक रास्ते खुले रखते हैं, बेवजह टकराव से बचते हैं, और फिर तुरंत पुतिन की मेजबानी करते भी दिखते हैं- यह दिखाने के लिए कि चीन, वॉशिंगटन द्वारा बनाई गई अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के जाल में फंसने वाला नहीं। शी की चुनौती का यही मूल है- 'लहजा संयत, सार मुखर और जोरदार'।

ईरान पर अमेरिका और इसराइल के सैन्य हमलों की निंदा ने इस शिखर सम्मेलन को तीखा तेवर दे दिया। हमलों को अंतरराष्ट्रीय कानून और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के बुनियादी नियमों का उल्लंघन बताकर, शी और पुतिन ने वॉशिंगटन को कटघरे में खड़ा किया, न कि तेहरान को। यह सिर्फ ईरान के लिए नहीं था। यह उस व्यापक दावे के बारे में था कि कोई भी शक्ति, कितनी भी ताकतवर क्यों न हो, उसे संयुक्त राष्ट्र के अधिकार क्षेत्र से बाहर किसी अन्य देश पर बमबारी करने, उस पर प्रतिबंध लगाने या उसे अस्थिर करने का कोई अधिकार नहीं है।

ट्रंप अप्रत्याशित रूप से शांति की बातें करें, बल्कि नोबेल शांति पुरस्कार की चाहत भी पालकर रखें, लेकिन उनका प्रशासन 'ताकत के जरिये शांति' के सिद्धांत का ही राग अलापता है, जो असल में मनमाफिक नतीजे हासिल करने के लिए अपनी ताकत के प्रदर्शन का ही दूसरा नाम है। वह बहुपक्षीय संस्थाओं पर हमले करते हैं, और जब दूसरे उनके विकल्प खड़े करने लगते हैं, वह शिकायत करते हैं। अमेरिका के हित की बात होती है तो उन्हें संप्रभुता याद आती है, लेकिन इस सिद्धांत का खुलेआम उल्लंघन भी करते हैं, जैसा कि वेनेज़ुएला और ईरान में अमेरिकी कार्रवाइयों और इसराइल के युद्धों के प्रति अमेरिकी समर्थन से जाहिर होता है। शी ने यही विरोधाभास पकड़कर उसे एक कूटनीतिक हथियार में तब्दील कर दिया है।

चीन का संदेश सीधा-सादा हैः अंतरराष्ट्रीय वैधता के केन्द्र में संयुक्त राष्ट्र ही रहना चाहिए, न कि वॉशिंगटन।

बेशक, बीजिंग का अपना रिकॉर्ड भी बेदाग नहीं है। ताइवान, दक्षिण चीन सागर और मानवाधिकारों के मामले में उसके रुख की आलोचना होती रही है। इसी तरह, यूक्रेन पर रूस के हमले ने संप्रभुता से जुड़ी किसी भी चर्चा में मॉस्को की स्थिति कमजोर कर दी है। फिर भी, शी के इस कदम की असली ताकत उसके नैतिक आधार में नहीं, उसके राजनीतिक टाइमिंग में निहित है। ट्रंप की एकतरफा सोच, उनके वादों और कार्यकलाप की अविश्वसनीयता ने चीन के लिए खुद को नियमों, संयम और वैश्विक संतुलन के रक्षक के तौर पर पेश करना आसान कर दिया है।

> शी-पुतिन शिखर सम्मेलन को एक कूटनीतिक जवाबी हमले के तौर पर देखा जाना चाहिए। इसमें ट्रंप के लिए संदेश था कि चीन, अमेरिकी दबाव के आगे नहीं झुकेगा। इसने दुनिया को यह भी बताया कि बीजिंग के पास साझेदार, मंच और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को लेकर वैकल्पिक नजरिया मौजूद है

'अमेरिकी महानता' की आड़ में ट्रंप अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर जितना ज्यादा प्रहार करते हैं, शी के लिए वैश्विक जिम्मेदारी पर दावेदारी की गुंजाइश उतनी ही ज्यादा बनती जाती है। वॉशिंगटन जितना ज्यादा एक वर्चस्ववादी की तरह बर्ताव करता है, एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और पश्चिम एशिया के कई देशों को बीजिंग की बहुध्रुवीयता की भाषा उतनी ही विश्वसनीय लगती है।

शी दुनिया से यह नहीं कह रहे कि वह अमेरिका के बजाय रूस को चुने। वह तो दुनिया से यह सवाल करने को कह रहे हैं कि आखिर हर दूसरे देश के आचरण का अंतिम निर्णायक अमेरिका ही क्यों बना रहे। यह चुनौती कहीं ज्यादा पेचीदा है। यह न सिर्फ सत्तावादी देशों को रास आती है, बल्कि उन सरकारों को भी, जो पश्चिमी देशों के दोहरे रवैये से तंग हैं।

बीजिंग शिखर सम्मेलन ने यह भी बताया कि रूस को चीन की जरूरत, चीन को रूस की जरूरत से कहीं ज्यादा है। पुतिन को बाजारों, टेक्नोलॉजी, कूटनीतिक सुरक्षा और ऊर्जा के खरीदार चाहिए। शी को रूस की जरूरत एक रणनीतिक संतुलन बनाने वाले के तौर पर है, लेकिन यह भी ध्यान रखते हैं कि कहीं मॉस्को पर निर्भर न हो जाएं। लंबे समय से अटकी पाइपलाइन योजनाओं सहित, ऊर्जा संबंधी अहम फैसलों को अंतिम रूप न दे पाना, इस साझेदारी की सीमाएं दिखाता है।

शी यह सीमाएं अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए, वह पुतिन के साथ संवाद तो करते हैं, लेकिन उनके सामने झुकते नहीं। वह ट्रंप के साथ बातचीत करते हैं, लेकिन उन पर भरोसा नहीं करते। अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र की केन्द्रीय भूमिका की बात करते हैं, साथ ही व्यापार, बुनियादी ढांचे, प्रौद्योगिकी और कूटनीति के ज़रिए चीन के प्रभाव का विस्तार भी करते रहते हैं। शासन-कौशल इसी को कहते हैं।

इसके विपरीत, ट्रंप के लिए विदेश नीति एक तमाशा है। उनकी यात्राओं से सुर्खियां निकलती हैं, हाथ मिलते हैं, घोषणाएं भी होती हैं, लेकिन कोई स्थायी व्यवस्था नहीं बनती। शी के शिखर सम्मेलन अलग तरह से डिजाइन होते हैं। उनका मकसद हर बातचीत के केन्द्र में चीन को रखना होता है। ट्रंप बीजिंग किसी सौदे की तलाश में आते हैं, पुतिन आश्वासन की तलाश में, और अन्य लोग पहुंच बनाने के लिए। शी सभी का स्वागत करते हैं, और जो तस्वीर उभरती है, वह बिल्कुल साफ है- दुनिया अब वॉशिंगटन के आगे सिर नहीं झुकाने वाली।

बहुध्रुवीय दुनिया की मांग महज नारा नहीं। चीन के लिए, बहुध्रुवीयता अमेरिकी वर्चस्व कमजोर करने वाली और बीजिंग को बगैर किसी सीधे टकराव के हालात बनाए, अपने प्रभाव का विस्तार करने का समय देती है। रूस के लिए, यह उसे अलग-थलग पड़ने से सुरक्षा देने वाली है। 'ग्लोबल साउथ' के कई देशों के लिए, यहां मोल-भाव के अवसर हैं। लेकिन, ट्रंप के अमेरिका के लिए, यह किसी तल्ख हकीकत की याद से कम नहीं कि उसकी सैन्य शक्ति अपने-आप ही उसे कोई राजनीतिक बढ़त या वैधता नहीं दिला देती।

*

'बहुध्रुवीयता' की बात असल में प्रभाव के प्रतिस्पर्धी क्षेत्रों की ओर एक कदम है। बड़ी शक्तियां संप्रभुता की कितनी ही दुहाई दें, लेकिन जब उन्हें ठीक लगता है, वे खुद ही इसका उल्लंघन करती हैं। रूस ने यूक्रेन में यही किया, और चीन ने अपने ही पड़ोस में दबे-छिपे ढंग से अपनी दावेदारी पेश की है।

इसलिए, शी-पुतिन शिखर सम्मेलन को एक कूटनीतिक जवाबी हमले के तौर पर देखा जाना चाहिए। इसमें ट्रंप के लिए संदेश था कि चीन, अमेरिकी दबाव के आगे नहीं झुकेगा। इसने दुनिया को यह भी बताया कि बीजिंग के पास साझेदार, मंच और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को लेकर एक वैकल्पिक नजरिया मौजूद है।

शी अमेरिका को सावधानी के साथ, लेकिन पुरजोर तरीके से चुनौती देते दिखते हैं- सावधानी से इसलिए, क्योंकि चीन को अब भी स्थिरता की दरकार है; और जोरदार ढंग से इसलिए, क्योंकि उनका मानना है कि इतिहास चीन की ओर करवट ले रहा है। ट्रंप की नीतिगत गलतियां और वर्चस्ववादी दुस्साहस इसमें कोई छोटी-मोटी मदद नहीं कर रहे हैं। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्सला यूनिवर्सिटी में शांति और संघर्ष अनुसंधान के प्रोफेसर हैं

अगर हमारा लोकतंत्र बुलंद है तो फिर डर किस बात का?

यह ज्यादा आसान होगा, अगर झूठ बोलना बंद कर दें कि हम असल में हैं क्या

आकार पटेल

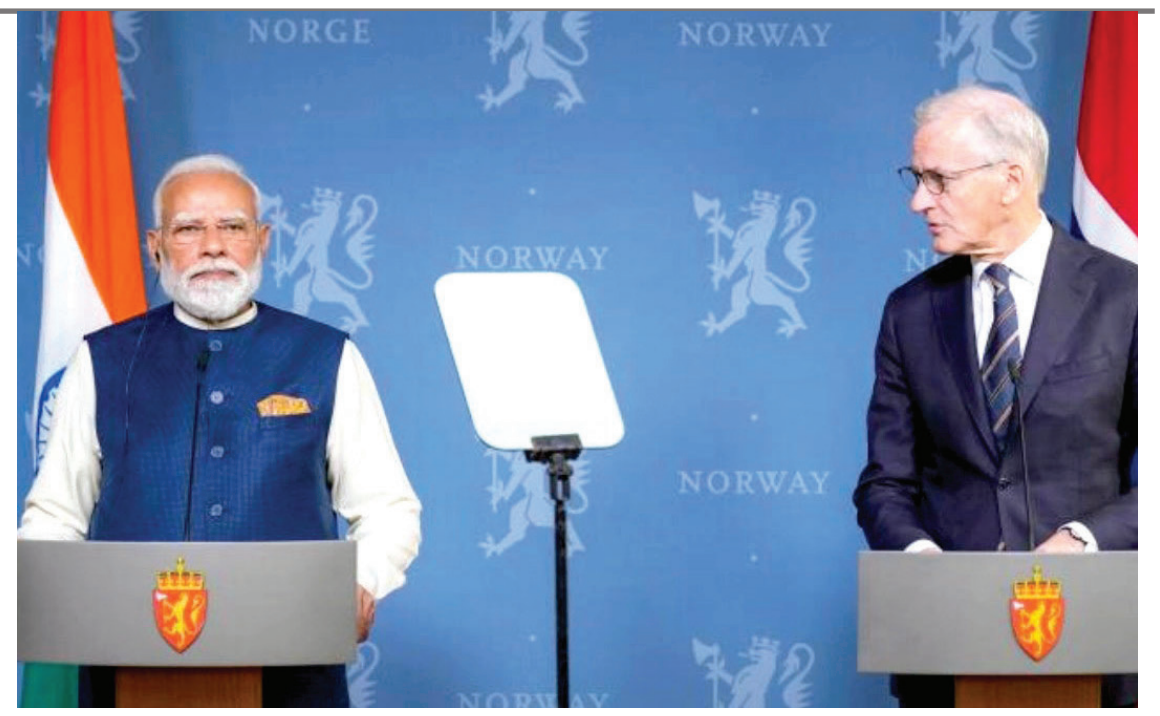

प्रेस के समक्ष प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और नार्वे के प्रधानमंत्री जोनास गहर स्टोरे। इसी दौरान नार्वे की पत्रकार हेले लिंग के सवाल का जवाब मोदी ने नहीं दिया था

एक पल के लिए मान लीजिए कि मैं एक कद्दावर और मजबूत आदमी हूं, जो आसानी से भारी वजन उठा लेता है, लचीला और फिट है। अगर कोई मेरे पास आकर मेरी कथित 'खराब सेहत' और 'ताकत की कमी' पर टिप्पणी करे, तो क्या इसका मुझ पर कोई असर पड़ेगा? अगर पहली बात सच है — यानी मैं सचमुच कद्दावर और मजबूत हूं — तो इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। पूरी संभावना है कि मैं उन टिप्पणियों को नजरअंदाज कर दूंगा।

मान लीजिए कि मैं अमीर हूं और पीढ़ियों से खानदानी रईस हूं। ऐसे में, किसी अजनबी की यह टिप्पणी — जिसमें वह इस बात को लेकर मुझ पर तरस खाता है कि मैं गरीब था या मैं गरीब दिखता था — मुझे क्यों परेशानी होगी या गुस्सा दिलाएगी? यह सच्चाई का कोई आईना नहीं है; असलियत तो यह है कि मैं न केवल अमीर था, बल्कि हमेशा से ही अमीर रहा था। अगर कोई व्यक्ति मेरे बारे में कोई राय रखता है, और वह राय न केवल गलत है, बल्कि उस सच्चाई के बिल्कुल विपरीत है जिसे मैं जानता हूं — तो ऐसी राय का मुझ पर कोई भी नकारात्मक असर नहीं पड़ेगा।

दूसरों की मेरे बारे में की गई टिप्पणियां मुझे तभी चुभती हैं, जब वे सच के करीब होती हैं और जब मैं उन्हीं बातों को लेकर असुरक्षित महसूस करता हूं, जिनका जिक्र उन शब्दों में होता है। एक युवा महिला — जो एक विदेशी रिपोर्टर है — उसके कुछ शब्दों की वजह से, विदेश मंत्रालय जैसी एक शक्तिशाली संस्था को उसे और पूरी दुनिया को इस राष्ट्र की महानता के बारे में उपदेश देना पड़ा। आजादी से जुड़े एक सीधे-सादे सवाल के जवाब में, हमें अपनी विरासत, अपनी संस्कृति और अपनी प्राचीन परंपराओं के बारे में पाठ पढ़ाए गए।

संवैधानिक मूल्यों और मौलिक अधिकारों के बारे में भी कुछ बातें कही गईं, जिनमें सुप्रीम कोर्ट जाने का अधिकार भी शामिल था। उस युवती ने इसके बाद एक ऐसा सवाल पूछा, जो ज्यादातर भारतीयों के मन में शायद ही कभी आता। उसने पूछा, "आखिर भारतीयों को अपने मौलिक अधिकारों का दावा करने के लिए सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने की जरूरत ही क्यों पड़ती है?" हमारे विदेश मंत्रालय के उस बड़े अधिकारी का जवाब यह था कि यह उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस है, और इसलिए, जाहिर है, उस युवती को चुप ही रहना चाहिए।

फिर यहां का मीडिया भी इसमें कूद पड़ा। ध्यान रहे, वह अपनी ही बिरादरी के पक्ष में नहीं, बल्कि सरकार के साथ मिलकर उस रिपोर्टर पर इसलिए चिल्लाने लगा कि उसने इतनी साफ तौर पर झूठी बातें पूछने की हिम्मत की थी। इन सब बातों का क्या मतलब था, यह किसी भी निष्पक्ष दर्शक की समझ से परे था; लेकिन यहां की इस मानसिकता का विश्लेषण करना दिलचस्प है।

अगर हम सच को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हैं, तो फिर अपने व्यवहार और मूल्यों पर सवाल उठाए जाने पर हम गुस्सा और परेशान क्यों हो जाते हैं? इसका जवाब बस यही हो सकता है कि असल में हम सुरक्षित नहीं हैं। और फिर अगला सवाल यह उठना लाजमी हैः क्या ऐसा इसलिए है कि सच जानने के बावजूद हम असुरक्षित महसूस करते हैं? या फिर इसलिए कि हम जिस बात का दावा कर रहे हैं, वह सच नहीं है?

चलिए मान लेते हैं कि पहली बात ही सही है। यानी, सच और तथ्यों के बावजूद — कि हम एक लोकतांत्रिक देश हैं, जहां लोगों को आजादी है और सरकार का इरादा बुरा नहीं है — भारत और उसकी सरकार खुद को असुरक्षित महसूस करते हैं। जब भी हमसे इस विषय पर कोई सवाल पूछा जाता है, तो हम बस ज़रा ज़्यादा ही संवेदनशील हो जाते हैं। अगर ऐसा ही है, तो विदेशी पत्रकारों और पर्यवेक्षकों के लिए यह सलाह है कि वे हमसे ऐसे पेश आएं, जैसे हम बच्चे हों। उन्हें हमारा सिर सहलाना चाहिए, कहना चाहिए कि हम 'अच्छे बच्चे' हैं, और हमें कोई लॉलीपॉप थमा देना चाहिए। हमसे कड़े सवाल पूछने पर हम नखरे दिखाने लगेंगे, इसलिए इससे बचना ही बेहतर है।

यहां यह बताना जरूरी है कि दूसरे देश हमारी सरकार के साथ इसी तरह पेश आते हैं। अगर उन्हें हमसे कुछ चाहिए होता है, तो वे हमें एक लॉलीपॉप (या कोई मेडल) और अपनी छोटी-सी स्पीच देने के लिए एक जगह देते हैं, और फिर हमसे वह सब हासिल कर लेते हैं जिसकी उन्हें जरूरत होती है। जब इसराइल से कहा जाता है कि वह इस इलाके में गलत बर्ताव कर रहा है और उसके बेवकूफी भरे युद्ध ने दुनिया को कितना नुकसान पहुंचाया है, तो बेंजामिन नेतन्याहू अपने बचाव में 'लोकतंत्र की जननी' द्वारा इसराइल को दी गई मान्यता का हवाला देते हैं। वह मेडल सचमुच पैसे की पूरी कीमत वसूल करने वाला साबित हुआ।

अब आइए, हम दूसरी संभावना पर विचार करें — कि हम इसलिए असुरक्षित महसूस करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हम जो दावा कर रहे हैं, वह असल में झूठा है। असल में, हम उतने लोकतांत्रिक या आजादी-पसंद नहीं हैं, जितना हम खुद को बताते हैं; और जब हमें इस बात की याद दिलाई जाती है, तो हमें बुरा लगता है और गुस्सा आता है।

अगर ऐसी बात है, तो इसका एक आसान उपाय है। इसका बाहरी दुनिया से कोई लेना-देना नहीं है, और उन्हें हमारे प्रति अपने व्यवहार को बदलने या हमारे साथ बच्चों जैसा बर्ताव करने की जरूरत नहीं है। यह उपाय बस इतना है कि सच बोला जाए।

पिछले 12 वर्षों से, भारत के राजनयिक नेहरूवादी खोल के भीतर रहकर काम कर रहे हैं। हम दुनिया को — विशेष रूप से लोकतांत्रिक और विकसित राष्ट्रों को — यह बताते आ रहे हैं कि हम धर्मनिरपेक्ष, बहुलवादी और उदार हैं। कि हम मानवाधिकारों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। जाहिर है, यह बात सरासर झूठ है। और जब विदेशी मीडिया तथ्यों की पड़ताल करता है, तो उसे भी इस झूठ का पता चल जाता है। बात बस इतनी है कि भारत की सरकार अब दोहरी जबान में बात करती है। यह देश के भीतर जो बातें कहती है और जिस तरह से पेश आती है, वह विदेश में कही जाने वाली बातों से बिल्कुल अलग होता है। यह दुनिया और वहां के पत्रकारों के सामने उन बुलडोजरों, लिंचिंग, जमानत से इनकार, वोटरों के नाम काटे जाने और समुदायों को अलग-थलग करने जैसी बातों का बखान नहीं करती, जो 'नए भारत' की बुनियाद हैं। इसके बजाय, यह नेहरू और सबको साथ लेकर चलने (समावेशन) वाली भाषा बोलती है।

> भारत की सरकार देश के भीतर जो बातें कहती है और जिस तरह से पेश आती है, वह विदेश में कही जाने वाली बातों से बिल्कुल अलग होता है। अगर हम बस जरा-सी बात पर बुरा मान जाते हैं, तो विदेशी पत्रकारों और पर्यवेक्षकों के लिए यही सलाह है कि वे हमारे साथ बच्चों जैसा बर्ताव करें

हम सभी के लिए, और दुनिया तथा उसके पत्रकारों के लिए यह ज्यादा आसान होगा, अगर हम इस बारे में झूठ बोलना बंद कर दें कि हम असल में हैं क्या। किसी ने बड़े ही मजाकिया अंदाज में कहा था कि राजनयिक वे लोग होते हैं जिन्हें अपने देश के लिए विदेश में झूठ बोलने भेजा जाता है। लेकिन, झूठ बोलने से जो चिंता और गुस्सा पैदा हो रहा है, उसे देखते हुए हमें इस विकल्प पर विचार करना चाहिए कि शायद ईमानदारी ही सबसे अच्छी कूटनीतिक नीति हो। ■

निगाहें उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और हिमाचल पर

कांग्रेस को मणिपुर और गोवा के विधानसभा चुनावों में भी बेहतरी की उम्मीद

कृष्ण प्रताप सिंह

केन्द्रशासित पुडुचेरी समेत चार राज्यों (पश्चिम बंगाल, असम, केरल और तमिलनाडु) के विधानसभा चुनाव के बाद अब निगाहें अगले साल के विधानसभा चुनावों पर लग गई हैं, जो दो बार में सात राज्यों में होंगे। मार्च में उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब और गोवा के साथ हिंसापीड़ित मणिपुर में। फिर नवंबर में हिमाचल प्रदेश और गुजरात में। इन चुनावों को अगले लोकसभा चुनावों का सेमीफाइनल कहा जा रहा है। इनके और 2029 के लोकसभा चुनावों के बीच 2028 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान विधानसभाओं के चुनाव भी होने हैं।

फिर भी प्रेक्षकों को उम्मीद है कि इन विधानसभा चुनावों के नतीजे देशवासियों के राजनीतिक मूड का ठीक-ठीक पता तो देंगे ही, लोकसभा चुनाव का नैरेटिव भी तैयार कर देंगे। देखना होगा कि भाजपा जिस तरह छल-छद्म बरतकर, यहां तक कि चुनाव आयोग की निष्पक्षता से खेलकर भी, अपवादों को छोड़कर, एक के बाद एक विधानसभा चुनाव जीतती आ रही है, विपक्षी दल उस पर लगाम लगा पाते हैं या नहीं।

फिलहाल, इस लगाम के लिए विपक्षी दलों को भाजपा की बहुचर्चित वोटचोरी, संवैधानिक और सरकारी संस्थाओं के दुरुपयोग और कुटिल बहुसंख्यकवादी एजेंडे के साथ साम-दाम-दंड और भेद सबसे कुशलतापूर्वक निपटना होगा। इसमें सफल हो गये तो वे बढ़े हुए मनोबल के साथ लोकसभा चुनाव में जाएंगे- 'परिवर्तन पक्का है' के आत्मविश्वास के साथ- और तब निस्संदेह, नरेन्द्र मोदी सरकार की चौतरफा ऐंटीइन्कम्बैसी उस पर बहुत भारी पड़ जाएगी।

फोटो: गेटी इमेजेज

उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की सक्रियता बताती है कि वह अपनी जड़ें मजबूत करने में लगी है

इसमें भी कोई संदेह नहीं कि ऐंटीइंकंबैसी उत्तर प्रदेश की हार-जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। यह सवाल भी उठना शुरू हो गया है कि क्या पश्चिम बंगाल से सर्वथा अलग परिस्थितियों वाले इस प्रदेश में भी भाजपा अपना मंसूबा उसी तर्ज की आक्रामकता से पूरा कर लेगी? इसका जवाब हां में नहीं दिया जा सकता, क्योंकि पश्चिम बंगाल में जो ऐंटीइंकंबैसी ममता बनर्जी के साथ थी, उप्र में वह योगी के साथ है।

प्रसंगवश, गत विधानसभा चुनाव में भाजपा ने भले ही उत्तर प्रदेश में अपनी सरकार बचा ली थी, उसके गठबंधन की सीटें 2017 की 325 के मुकाबले घटकर 273 हो गई थीं। गत लोकसभा चुनाव में तो वह प्रदेश की 80 में आधी से ज्यादा सीटें हारकर सिर्फ 33 जीत पाई थी, जबकि 2014 के लोकसभा चुनाव से उसके गठबंधन ने जो 73 सीटें जीती थीं, 2019 में वे भी घटकर 62 हो गई थीं।

सपा ने आगामी विधानसभा चुनाव भी इंडिया गठबंधन और पीडीए के बैनर पर ही लड़ने का एलान कर रखा है और दलितों को अपने साथ बनाए रखने की कवायदों में लगी है। दूसरी ओर लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने अपने निर्वाचन क्षेत्र रायबरेली में एक महत्वाकांक्षी सम्मेलन कर दलितों को अपने हकों के लिए 'संविधान पर हमलावर गद्दारों' के विरुद्ध मुखर होने को कहकर कांग्रेस के इरादे भी जता दिए हैं।

यहां जानना जरूरी है कि कांग्रेस उत्तर प्रदेश में भले ही सपा के साथ इंडिया गठबंधन की जूनियर पार्टनर है, आगामी विधानसभा चुनाव वाले अन्य छह राज्यों में बड़ी ताकत है। हिमाचल प्रदेश में वह सत्ता में है तो अन्य पांच राज्यों में सत्ता की प्रबल दावेदार। आज की स्थिति में उसे विश्वास है कि हिमाचल में तो अपनी सरकार बचा ही लेगी, उत्तराखंड, पंजाब, गोवा और मणिपुर में अपने प्रतिद्वंद्वियों (भाजपा और आप) को बेदखल कर उनसे सत्ता छीन लेगी। जहां तक गुजरात की बात है, राहुल गांधी लोकसभा में अपने भाषण में भाजपा को चुनौती दे चुके हैं कि इस बार वे उसे गुजरात में भी हराकर दिखाएंगे।

कांग्रेस के सूत्र बताते हैं उसने इन राज्यों में अपने पिछले प्रदर्शनों और संगठन की स्थिति को देखते हुए लक्ष्य पाने की तैयारियां शुरू कर दी हैं। क्योंकि उसे मालूम है कि देश की सत्ता की 2029 की सबसे बड़ी लड़ाई से पहले अपने कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ाने के लिए उसके समक्ष इन राज्यों में 'करो या मरो' के अलावा कोई रास्ता नहीं है। हां, इन राज्यों में केरल की तर्ज पर उसकी जीत का सिलसिला चल निकला तो 2028 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के विधानसभा चुनावों में भी उसे उसका मनोवैज्ञानिक लाभ मिलेगा।

> देखना होगा कि भाजपा जिस तरह छल-छद्म बरतकर, यहां तक कि चुनाव आयोग की निष्पक्षता से खेलकर भी, अपवादों को छोड़कर, एक के बाद एक विधानसभा चुनाव जीतती आ रही है, विपक्षी दल उस पर लगाम लगा पाते हैं या नहीं

हिमाचल प्रदेश को देखें तो कांग्रेस के विरोधी दक्षिणपंथी-गोदी पत्रकार भी मानते हैं कि वह चार साल पूरे करने जा रही राज्य की अपनी सुखविंदर सिंह सुक्खू सरकार को शुरुआती झटके के बाद संभालने में सफल रही है। इस सरकार को फरवरी 2024 में तब बड़ा झटका लगा था, जब राज्यसभा चुनाव के वक्त उसके आधा दर्जन विधायकों के साथ छोड़ देने से कांग्रेस प्रत्याशी अभिषेक मनु सिंघवी चुनाव हार गए थे। लेकिन उसके बाद विधानसभा अध्यक्ष की कार्रवाई में उक्त विधायकों की विधानसभा सदस्यता चली गई और खाली सीटों पर उपचुनाव हुए तो भाजपा के टिकट पर उनमें से चार हार गए। इस पहाड़ी राज्य में आर्थिक परेशानियों के बावजूद सुक्खू सरकार के खिलाफ फिलहाल कोई ऐंटीइंकंबैसी (सत्ताविरोधी लहर) नहीं दिख रही और चुनाव में उसकी सत्ता में वापसी कठिन नहीं लगती। इस कारण और कि राज्य में भाजपा में गुटबाजी अपने चरम पर पहुंची हुई है।

उत्तराखंड में भाजपा की पुष्कर सिंह धामी सरकार अपनी पार्टी के 10 साल के शासन की ऐंटीइन्कम्बैंसी झेल रही है। तिस पर उसमें अंदरूनी असंतोष भी चरम पर है, जबकि मुख्य विपक्षी पार्टी कांग्रेस अपनी पुरानी शिकस्तों से उबर और सांगठनिक कमजोरी दूर कर पकड़ मजबूत करने और खुद को निचले स्तर तक मजबूत करने में लगी है। वह ब्लॉक और नगर स्तर पर नए युवा चेहरों को जिम्मेदारियां सौंप रही है, ताकि पार्टी को बूथ स्तर तक सक्रिय किया जा सके। साथ ही अंकिता भंडारी हत्याकांड, महंगाई, पलायन, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों को लेकर सड़कों पर भी उतर रही है।

पंजाब में इस बार दिलचस्प चुनावी मुकाबले के आसार हैं। फरवरी 2022 में हुए गत विधानसभा चुनाव में वहां आम आदमी पार्टी (आप) ने अंदरूनी कलह से त्रस्त कांग्रेस पर धमाकेदार जीत दर्ज करके सरकार बना ली थी। आप के सात राज्यसभा सदस्यों को तोड़कर अपने पाले में करने के बाद भाजपा ने वहां बंगाल दोहराने का मंसूबा बांध रखा है। भले ही वहां उसकी कोई जमीन नहीं है। दूसरी ओर शिरोमणि अकाली दल की अपनी आकांक्षाएं हैं और अभी साफ नहीं है कि पुरानी गठबंधन सहयोगी के रूप में भाजपा से उसके कैसे रिश्ते होंगे।

गोवा में 2017 में चालीस सदस्यों वाली विधानसभा में सबसे ज्यादा सीटें जीतने के बावजूद कांग्रेस अपनी सरकार नहीं बना पाई थी, जिसकी कसक उसमें अभी भी बरकरार है। जानकारों के अनुसार, यह कसक उसके मतदाताओं में भी हो तो राज्य की भाजपा सरकार के खिलाफ 10 साल की एंटीइन्कम्बैंसी से उसको भरपूर लाभ मिल सकता है और सरकार बनाने के उसके सपने पूरे हो सकते हैं।

गत लोकसभा चुनाव में मणिपुर की दोनों लोकसभा सीटें कांग्रेस ने जीती थी और वहां की भीषण हिंसा और आगजनी से निपटने में भाजपा की केन्द्र और राज्य सरकारों की घनघोर विफलता के मद्देनजर उसको लगता है कि आगामी विधानसभा चुनाव में उसके मतदाता पूर्वोत्तर में उसकी कोई हुई जमीन की वापसी का आगाज करा देंगे। इसके लिए वह वहां खूब हाथ-पैर चला रही है।

गुजरात, जो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का गृहराज्य भी है, तो राहुल गांधी का दावा है कि कांग्रेस 1995 से वहां सत्तासीन भाजपा को आगामी विधानसभा चुनावों में बेदखल कर देगी। लोकसभा में इस दावे के अलावा वह अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं और मतदाताओं के सामने इसका संकल्प भी ले चुके हैं। वह कहते हैं कि इंडिया गठबंधन ने जैसे अयोध्या में फैजाबाद लोकसभा सीट पर भाजपा को मात दी, ठीक उसी तरह गुजरात में भी भाजपा को हरा देगा। इसके लिए वह राज्य में कांग्रेस के ढांचे में बदलाव कर उसके फैसले जिला स्तर पर कार्यकर्ताओं की सहमति से लेने और उम्मीदवारों का चयन स्थानीय और जमीनी कार्यकर्ताओं के फीडबैक के आधार पर करने की बात भी कहते हैं।

उनकी बातें राज्य के पार्टी कार्यकर्ताओं को इस लिहाज से आश्वस्त करती हैं कि 2017 के विधानसभा चुनाव में वे अपनी सक्रियता से इस राज्य में भाजपा की 2012 की बढ़त रोक चुके हैं। तब उनकी कोशिशों से भाजपा की सीटें 115 से घटकर 99 रह गई थीं, कांग्रेस की 61 से बढ़कर 77 हो गई थीं और राहुल की प्रतिक्रिया थी : बस, थोड़ी कसर रह गई।

अलबत्ता, गत विधानसभा चुनाव में कांग्रेस अपने सबसे खराब प्रदर्शन के लिए मजबूर हो गई थी, जिसके चलते कई लोग कहते हैं कि 'अभी तो इब्तिदा-ए-इश्क है' और 'आगे देखा जाएगा'। ■

भाजपा के नेहरू द्वेष में घृणा की सायास निर्मिति

नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता थे। उनके योगदान को समझे बिना भारत के लोकतांत्रिक विकास को समझा नहीं जा सकता

शैलेन्द्र चौहान

भारतीय राजनीति में पंडित जवाहरलाल नेहरू का नाम केवल स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में ही नहीं, बल्कि आधुनिक भारत की वैचारिक संरचना के प्रमुख निर्माता के रूप में भी लिया जाता है। उन्होंने संसदीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सार्वजनिक क्षेत्र, पंचवर्षीय योजनाओं और गुटनिरपेक्ष विदेश नीति जैसी अवधारणाओं को भारतीय राज्य की आधारभूमि बनाया। उनके सामने बड़ी चुनौतियां थीं। उन्हें दरकिनार कर उनका मूल्यांकन इकतरफा और पूर्वाग्रहयुक्त ही होगा।

अब विडंबना यह है कि आजादी के लगभग आठ दशक बाद भी भारतीय जनता पार्टी और उससे जुड़े वैचारिक समूहों के भीतर रणनीतिक रूप से नेहरू के प्रति एक तीव्र असहमति, आलोचना और कई बार घृणा की सायास निर्मिति स्पष्ट दिखाई देती है। यह नेहरू-द्वेष केवल किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के प्रति असहमति नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्र की दिशा और चरित्र को लेकर दो परस्पर विरोधी दृष्टियों का संघर्ष भी है।

नेहरू भारत को एक आधुनिक, बहुलतावादी और वैज्ञानिक राष्ट्र के रूप में विकसित करना चाहते थे। उनके लिए भारत केवल धार्मिक पहचान पर आधारित राष्ट्र नहीं था, बल्कि विविध भाषाओं, संस्कृतियों, जातीयताओं और विश्वासों का लोकतांत्रिक संघ था। वह धर्मनिरपेक्षता को राज्य की निष्पक्षता के रूप में देखते थे।

इसके विपरीत, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उससे प्रेरित राजनीतिक धाराएं भारत को मूलतः एक "हिन्दू राष्ट्र" के रूप में देखने की ओर प्रवृत्त रही हैं। इस कारण नेहरू की धर्मनिरपेक्ष अवधारणा उनके लिए वैचारिक चुनौती बन गई। नेहरू ने संविधान, संसद और लोकतांत्रिक संस्थाओं को सर्वोपरि माना, जबकि हिन्दुत्ववादी राजनीति सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को अधिक महत्व देती रही। इस वैचारिक टकराव ने समय के साथ नेहरू-विरोध को स्थायी राजनीतिक मुद्रा में बदल दिया। भाजपा और उससे जुड़े समूहों द्वारा नेहरू की आलोचना का एक प्रमुख आधार यह तर्क है कि उन्होंने भारत के विभाजन, कश्मीर समस्या, चीन नीति और कांग्रेस के केन्द्रीकरण में गंभीर भूलें कीं। इन मुद्दों पर ईमानदार बहस हो सकती है और आवश्यक भी है। इतिहास का कोई भी नायक आलोचना से परे नहीं हो सकता। किंतु समस्या तब उत्पन्न होती है जब आलोचना ऐतिहासिक विश्लेषण के बजाय क्षुद्र राजनीतिक अभियान में बदल जाती है।

आज की राजनीति में नेहरू को लगभग हर राष्ट्रीय समस्या का मूल कारण बताने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बेरोजगारी, सीमा विवाद, जातीय तनाव, आर्थिक असमानता या प्रशासनिक विफलताओं तक को नेहरू की "गलत नीतियों" से जोड़ दिया जाता है। यह दृष्टिकोण इतिहास को जटिल प्रक्रियाओं के बजाय एक व्यक्ति की विफलताओं में समेट देता है।

दरअसल, इतिहास कभी भी एकरेखीय नहीं होता। भारत जैसे विशाल और विभाजनग्रस्त देश में 1947 के बाद की चुनौतियां अत्यंत कठिन थीं। सांप्रदायिक हिंसा, शरणार्थी संकट, रियासतों का विलय, गरीबी, निरक्षरता और औपनिवेशिक पिछड़ेपन के बीच नेहरू ने आधुनिक संस्थाओं की नींव रखी। उनकी नीतियों की सीमाएं थीं, लेकिन उपलब्धियों की उपेक्षा कर केवल दोषारोपण करना इतिहास के साथ न्याय नहीं है।

> किसी भी राष्ट्र की परिपक्वता इसी में होती है कि वह अपने अतीत को न तो अंधभक्ति से देखे और न ही घृणा से। भारत का भविष्य भी शायद इसी संतुलित ऐतिहासिक विवेक पर निर्भर करेगा

भाजपाई विमर्श में अक्सर सरदार वल्लभभाई पटेल को नेहरू के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह कहा जाता है कि यदि पटेल प्रधानमंत्री बने होते तो भारत अधिक मजबूत और निर्णायक राष्ट्र बनता। जबकि ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि नेहरू और पटेल के बीच मतभेद अवश्य थे, पर वे एक-दूसरे के सहयोगी भी थे। दोनों ने मिलकर स्वतंत्र भारत की नींव रखी।

नेहरू और पटेल के संबंधों को आज जिस तरह "राष्ट्रवादी बनाम उदारवादी" संघर्ष के रूप में चित्रित किया जाता है, वह काफी हद तक समकालीन राजनीतिक निर्माण है। इसका उद्देश्य कांग्रेस की ऐतिहासिक विरासत को विभाजित करना और नेहरू की केन्द्रीय भूमिका को कमतर करना है।

फोटो: गेटी इमेजेज

नेहरू की पुण्यतिथि पर विशेष

पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिए भारत केवल धार्मिक पहचान पर आधारित राष्ट्र नहीं, विविध भाषाओं, संस्कृतियों और विश्वासों का लोकतांत्रिक संघ था

नेहरू का व्यक्तित्व भारतीय लोकतंत्र की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें असहमति, बौद्धिकता और बहुलता को महत्व दिया जाता था। वह आलोचना से घबराते नहीं थे। संसद में तीखी बहसें होती थीं, प्रेस अपेक्षाकृत स्वतंत्र था और विश्वविद्यालयों में वैचारिक विविधता को स्थान मिलता था।

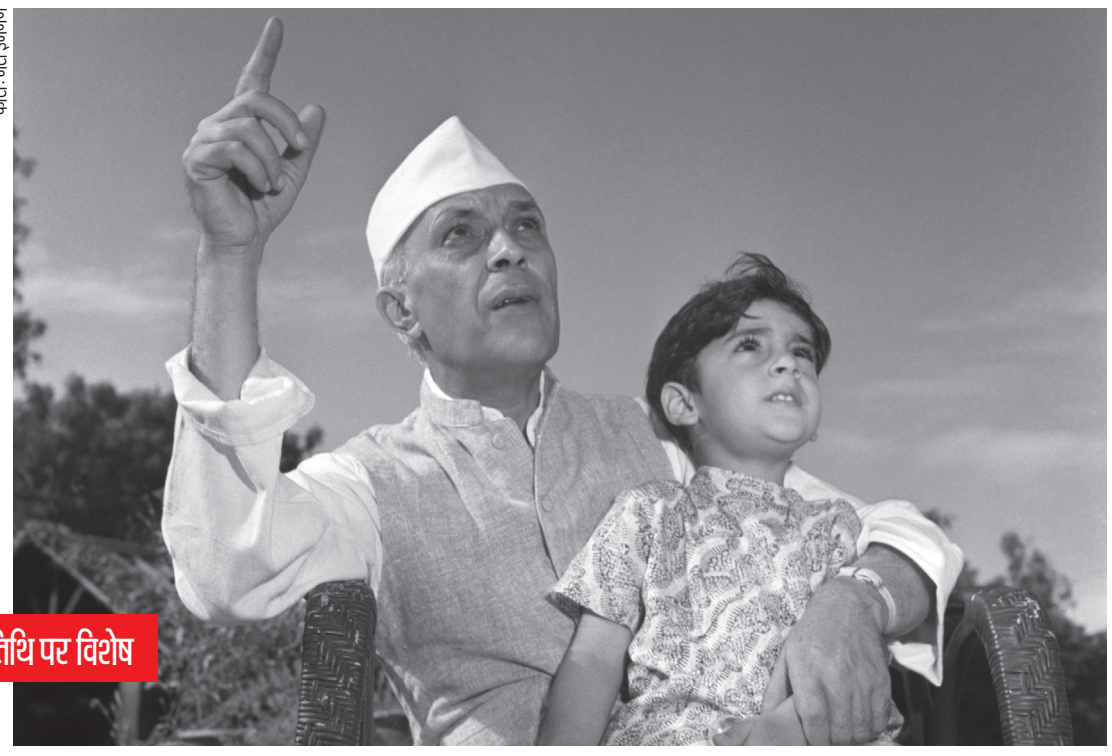

वर्तमान दौर की आक्रामक राष्ट्रवादी राजनीति के लिए यह परंपरा असुविधाजनक प्रतीत होती है। इसलिए नेहरू केवल एक ऐतिहासिक नेता नहीं, बल्कि एक वैकल्पिक राजनीतिक संस्कृति के प्रतीक बन जाते हैं। नेहरू की स्मृति को कमजोर करना दरअसल उस उदार-लोकतांत्रिक परंपरा को चुनौती देना भी है जो भारतीय गणराज्य की मूल आत्मा रही है।

समकालीन राजनीति में एक और कारण महत्वपूर्ण है। आज राजनीतिक दल अपने वर्तमान नेतृत्व को "ऐतिहासिक रूप से सबसे निर्णायक" सिद्ध करना चाहते हैं। इसके लिए अतीत के नेताओं को कमजोर या असफल सिद्ध करना उपयोगी रणनीति बन जाती है। नेहरू, क्योंकि स्वतंत्र भारत के सबसे लंबे समय तक प्रधानमंत्री रहे और उनकी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी थी, इसलिए वह इस तुलना के केन्द्र में आ जाते हैं।

इसलिए नेहरू-विरोध केवल वैचारिक असहमति नहीं, बल्कि राजनीतिक वैधता अर्जित करने की रणनीति भी है। वर्तमान नेतृत्व जितना अधिक "नया" और "निर्णायक" दिखाना होता है, उतना ही नेहरू को "कमजोर" और "विफल" सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है।

लोकतंत्र में किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व की आलोचना स्वाभाविक और आवश्यक है। नेहरू की आर्थिक नीतियों, चीन संबंधी आकलन, कांग्रेस के केन्द्रीकरण या कश्मीर नीति पर गंभीर बहसें होती रही हैं और आगे भी होनी चाहिए। किंतु आलोचना तब द्वेष में बदल जाती है जब वह तथ्यों की जगह भावनात्मक प्रचार पर आधारित हो जाए।

नेहरू को केवल खलनायक के रूप में प्रस्तुत करना उतना ही गलत है जितना उन्हें त्रुटिहीन महापुरुष मान लेना। इतिहास को संतुलित दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता भी थे और सीमाओं वाले राजनेता भी। उनके योगदान और भूलों दोनों को समझे बिना भारत के लोकतांत्रिक विकास को समझा नहीं जा सकता। भाजपाइयों का नेहरू-द्वेष भारतीय राजनीति के गहरे वैचारिक संघर्ष का परिणाम है। यह संघर्ष केवल दो नेताओं या दलों का नहीं, बल्कि भारत की आत्मा की दो भिन्न अवधारणाओं का संघर्ष है — एक बहुलतावादी, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत की अवधारणा, और दूसरी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधारित अवधारणा।

नेहरू की आलोचना लोकतांत्रिक अधिकार है, लेकिन इतिहास को राजनीतिक प्रचार का उपकरण बना देना खतरनाक है। किसी भी राष्ट्र की परिपक्वता इसी में होती है कि वह अपने अतीत को न तो अंधभक्ति से देखे और न ही घृणा से। भारत का भविष्य भी शायद इसी संतुलित ऐतिहासिक विवेक पर निर्भर करेगा। ■

Published Date 31 May, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

बुज़ुर्गों का खयाल रखने की मिसाल

पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में रहने वाली एक बुज़ुर्ग संताल आदिवासी महिला दुलेश्वरी की सेवा में उनके परिवार की अलग-अलग पीढ़ियों की कई महिलाएं लगी हुई हैं

सर्बजया भट्टाचार्य

फोटो: जितमन्यु दास

दुलेश्वरी अपने बेटे भरत सरेन और बहू लक्ष्मी सरेन के साथ रहती हैं और परपोती प्रमिला के साथ बहुत सहज महसूस करती हैं। नंगे पैर चलना पसंद करती हैं। वैसे रबर की एक चप्पल उनके पास है, लेकिन कहती हैं कि 'अगर मैं चप्पल पहनूंगी, तो गिर जाऊंगी'

दुलेश्वरी सरेन के राशन कार्ड में उनकी जन्मतिथि 1 जनवरी 1963 दर्ज है। लेकिन कमजोर पड़ चुकी यह बुज़ुर्ग महिला अपने अत्यंत कमजोर हो चुके शरीर के कारण काफी वृद्ध दिखती हैं। उनकी 16 साल की परपोती, प्रमिला किस्कू कहती है, "वह लगभग 100 साल की तो होंगी ही।"

हम पश्चिम बंगाल के शांतिनिकेतन के बागानपाड़ा मोहल्ले में उनके घर के बाहर बैठे हैं। यहां की घुमावदार गलियों में आवारा कुत्ते और पाले गए मुर्गे-मुर्गियां साथ-साथ दिखाई देते हैं। कुत्ते आराम से पड़े रहते हैं, जबकि मुर्गे-मुर्गियां जमीन कुरेदने में लगे रहते हैं।

"शांतिनिकेतनआमार नातनिर नाम (शांतिनिकेतन मेरी नातिन का नाम है) यह कहते हुए दुलेश्वरी की आवाज धीमी पड़ जाती है। फिर वह अपने छोटे कटे हुए सफेद बालों में उंगलियां फेरते हुए मुस्कुराती हैं।

वह हमें बताती हैं- "उकुन होएछिलो (मुझे जुएं हो गई थीं)। किसके पास इतना समय है कि बैठकर उन्हें निकाले? इसलिए इसने मेरे बाल काट दिए," दुलेश्वरी मुस्कुराते हुए अपने पास बैठी प्रमिला की ओर इशारा करती हैं। स्नेह से कहती हैं, "ये (प्रमिला) रोज मेरे लिए चाय बनाती है और मेरे नाखून भी काटती है।"

ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ने वाली प्रमिला, दुलेश्वरी की कमजोर पड़ चुकी याददाश्त तत्काल न सिर्फ दुरुस्त कर देती है, बल्कि जरूरत पड़ने पर उन्हें प्यार से सुधारती भी रहती है। दुलेश्वरी, प्रमिला और अपने परपोते की पत्नी जबा के साथ रहती हैं। जबा को अपने छोटे बच्चे को भी देखना होता है। यही दोनों मुख्य रूप से उनकी देखभाल करती हैं।

प्रमिला से हमें पता चलता है कि दुलेश्वरी और उनके पति पहले एक चावल मिल में काम करते थे, जबकि बुज़ुर्ग महिला चुपचाप बैठकर किसी और के मुंह से अपनी बीती जिंदगी की बातें सुनती रहती हैं। वह बीच में बोल पड़ती हैं, "हम बोलपुर में रहते थे।" उन्हें टुकड़ों में अपना पुराना जीवन याद है- धान से जुड़ी यादें, मेहनत-मजदूरी से जुड़ी यादें। दुलेश्वरी बताती हैं, "वे हमें मजदूरी देते थे।" लेकिन उन्हें यह याद नहीं कि कितनी मजदूरी मिलती थी या तमाम सालों में वह कभी बढ़ी भी थी या नहीं।

आज दुलेश्वरी को नहाने या शौच के लिए खेत में जाने जैसे रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े कुछ कामों के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। वह लगभग 300 मीटर दूर लगे सामुदायिक नल पर नहाती हैं। दुलेश्वरी कहती हैं कि वह वहां खुद चली जाती हैं, लेकिन प्रमिला उनकी बात काटते हुए बताती है कि उन्होंने कुछ महीने पहले सर्दी शुरू होने के बाद से अब तक स्नान नहीं किया है।

दुलेश्वरी की स्थिति कोई असामान्य बात नहीं है। साल 2017-18 के नेशनल सैंपल सर्वे (एनएसएस) के मुताबिक, भारत में लगभग 70 प्रतिशत बुज़ुर्ग अपनी रोजमर्रा की जिंदगी के लिए दूसरों पर निर्भर हैं, और महिलाओं की स्थिति इससे भी ज्यादा खराब है।

प्रमिला कहती हैं, "कभी-कभी जब हम आसपास नहीं होते, तो ये अकेले ही निकल पड़ती हैं। फिर हमें उन्हें ढूंढकर वापस लाना पड़ता है।" किशोरी आगे बताती हैं, "यह कहती हैं कि अपनी बेटी के घर जा रही हैं।"

प्रमिला बताती हैं कि कई बार दुलेश्वरी यह कहकर घर से नंगे पांव बाहर निकल जाती हैं कि उन्हें नीम की टहनियां बटोरनी हैं। लेकिन अक्सर होता यह है कि वापस लौटते समय वह घर का रास्ता भूल जाती हैं। दुलेश्वरी के पास रबर की एक चप्पल है, लेकिन वह कहती हैं, 'अगर मैं चप्पल पहनूंगी, तो गिर जाऊंगी।'

*

इस मोहल्ले में ज्यादातर संताल परिवार रहते हैं और दुलेश्वरी भी इसी आदिवासी समुदाय से हैं। शांतिनिकेतन के बीचोबीच होने के बावजूद बागानपाड़ा हर साल राज्य के अलग-अलग हिस्सों से भारी संख्या में आने वाले पर्यटकों की नजरों से लगभग ओझल ही रहता है। कच्चे घरों के बीच हाल के वर्षों में कुछ पक्के मकान भी बन गए हैं, जिनमें अधिकतर कथित ऊंची जातियों और संपन्न वर्गों के लोग रहते हैं। कई संताल महिलाएं इन घरों में घरेलू कामगार के तौर पर काम करती हैं। पुरुष, चाहे जवान हों या बुज़ुर्ग, वे माली का या फिर ऐसे ही छोटे-मोटे दूसरे काम करते हैं।

दुलेश्वरी की बेटी रूबी मुर्मू कहती हैं, "यहां पहले बहुत बड़ा बगीचा हुआ करता था।" उनकी यह याद इस मोहल्ले के नाम का मतलब भी समझा देती हैं। बांग्ला में 'बागान' का अर्थ बगीचा होता है। वक्त के साथ बगीचा छोटा होता गया और कस्बा फैलता चला गया।

> एक बच्चे को पालने के लिए पूरे गांव की जरूरत पड़ती है, तो शायद बुज़ुर्गों की देखभाल के लिए भी पूरे समुदाय की जरूरत होती है। दुलेश्वरी जैसी महिलाओं को शहर की इस तंग जिंदगी में इन कमियों के साथ ही जीना पड़ता है

घरेलू कामगार रूबी कहती हैं, "लेफ्ट की सरकार के समय मां को कुछ पैसे मिले थे।" लेकिन वह रकम शौचालय बनवाने या घर में रंग-रोगन करवाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी। यह कच्चा घर दुलेश्वरी के बेटे भरत सरेन और उनके परिवार का है। एक हादसे के बाद भरत सरेन के शरीर के बाएं तरफ के ऊपरी हिस्से ने काम करना बंद कर दिया था, जिसके बाद से वह काम नहीं कर पा रहे हैं। उनकी पत्नी लक्ष्मी और बेटी घरेलू कामगार हैं। जिन घरों में वे काम करती हैं, वहां से उन्हें 1,000 रुपये मिलते हैं। लक्ष्मी को महिलाओं के लिए चल रही सरकारी योजना 'लक्ष्मीर भंडार' से अतिरिक्त 1,500 रुपये भी मिलते हैं।

अपने छोटे पोते को नहलाने की कोशिश करती लक्ष्मी कहती हैं, "हम उन्हें दिन में बस दो वक्त का खाना दे पाते हैं।"

दुलेश्वरी को हरी पत्तेदार सब्जियां बहुत पसंद हैं। कभी-कभी उनकी बेटी अपने हाथ से बनाई कोई खास चीज उनके लिए लेकर आती है। साठ की उम्र पार कर चुकी रूबी कहती हैं, "मैं उनसे अक्सर मिलने आ जाती हूं, क्योंकि मैं पास के ही एक घर में काम करती हूं।" वह आगे कहती हैं, "मुझे उनकी चिंता तो रहती ही है। मां अब बूढ़ी हो गई हैं, उन्हें देखभाल की जरूरत है।"

लेकिन किसी देखभाल करने वाले को काम पर रखना उनके लिए संभव नहीं है। रूबी घरेलू कामगार के रूप में सिर्फ 1,500 रुपये कमाती हैं। उनकी मां को राज्य सरकार की विधवा पेंशन के रूप में 1,000 रुपये और मिलते हैं। इससे जुड़े कागजी कामों और खर्चों को भी रूबी ही संभालती हैं। बाहर से किसी तरह की देखभाल की सुविधा न होने के कारण यह जिम्मेदारी परिवार की महिलाओं पर ही सबसे ज्यादा आ जाती है।

दुलेश्वरी कहती हैं, "नोजोर कोमे गेछे (मेरी आंखों की रोशनी कम हो गई है)। मुझे ऑपरेशन की जरूरत है।" शायद वह मोतियाबिंद की बात कर रही हैं, लेकिन उनके परिवार में यह कोई निश्चित तौर पर नहीं जानता। वह आगे कहती हैं- "रात ए भालो घुमाते पारी ना (मुझे रात में अच्छी नींद नहीं आती)।" यह बुज़ुर्ग लोगों की आम शिकायत रहती है। इसलिए वह दिन का ज्यादातर समय बिस्तर पर ही बिताती हैं और कई बार दोपहर तक सोती रहती हैं। कभी जंगलों में रहने वाले संतालों के पास भीड़भाड़ वाले बागानपाड़ा मोहल्ले में जल, जंगल और जमीन जैसी चीजोंतक पहुंच नहीं रही। जिन छोटे-छोटे परिसरों में वे रहते हैं, वहां न तो त्योहार मनाने की पर्याप्त जगह है और न ही इकट्ठा होकर नाचने-गाने की। संताल सामाजिक कार्यकर्ता और शिक्षाविद बोरो बास्की कहते हैं, "इससे समुदाय की पारंपरिक और सांस्कृतिक जीवनशैली धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है।"

अगर एक बच्चे को पालने के लिए पूरे गांव की जरूरत पड़ती है, तो शायद बुज़ुर्गों की देखभाल के लिए भी पूरे समुदाय की जरूरत होती है। बागानपाड़ा में रहने वाली दुलेश्वरी जैसी महिलाओं को शहर की इस तंग जिंदगी में इन कमियों के साथ ही जीना पड़ता है। मुस्कुराते हुए दुलेश्वरी पूछती हैं, "निजेर काज कोरबे, ना आमाके देखबे? (वे अपना काम करेंगी या मेरी देखभाल करेंगी?)" ■

इस कहानी में मदद के लिए प्रलय मन्ना का आभार।

साभार: ruralindiaonline.org

ADVERTISEMENT RATE CARD

w.e.f. 1 September 2025

NATIONAL HERALD ON SUNDAY | संडे नवजीवन

The AJL Group has two weekly newspapers and three website portals in English, Hindi and Urdu

www.nationalheraldindia.com | www.navjivanindia.com | www.qaumiawaz.com

Commercial Display (w.e.f 1 Sept 2025)

Category of Advertisements (C/BW)	National Herald on Sunday (National Edition)	National Herald on Sunday (Mumbai)	Sunday Navjivan (National Edition)
Full Page (1650 sq.cm)	Rs 10 Lakh	Rs 8 Lakh	Rs 10 Lakh
Half Page (800 sq. cm)	Rs 6 Lakh	Rs 5 Lakh	Rs 6 Lakh
Quarter Page (400 sq. cm)	Rs 4 Lakh	Rs 3 Lakh	Rs 4 Lakh
< Quarter Page (per sq. cm)	Rs 700	Rs 450	Rs 700

PAGE PREMIUM		Display Ads BW/Color	Political Ads BW/Color
	Front page	100% Surcharge	200% Surcharge
	page (3 & back)	25% Surcharge	100% Surcharge
	Specified page	50% Surcharge	50% Surcharge

*Advance payment is needed for all political advertisements.

Classified for festival greetings, anniversary & notices

Full page @ Rs 1,00,000 | Half Page @ 60,000

< 240 sq. cm @ Rs 175 per sq. cm

State Govt Advertisements/ C/BW

@ Rs 525 per sq. cm

The Associated Journals Limited
Herald House, 5A, Bahadur Shah Zafar Marg,
New Delhi 110002
Phone: 011-47636300 - 313
Whatsapp No: 9650400932
Email: advt@nationalheraldindia.com

Online Remittance/Bank Beneficiary Details:
Name: **Associated Journals Limited**
Bank Name: **Canara Bank**
Branch Name: **I P Estate, New Delhi-110002**
C/A No.: **90171010003955;** IFSC Code: **CNRB0019017**
GST No.: **27AAECA1180A1ZB ;** PAN No.: **AAECA1180A**

NOTE: Cheque / DD should be drawn in favor of "Associated Journals Limited" and sent to Herald House, 5-A Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002.

General Terms and Conditions

w.e.f. 1 September 2025

National Herald on Sunday (Delhi & Mumbai) and Sunday Navjivan

1. All advertisements are published in Edition(s) of the paper and charges are payable strictly in advance of publication by Bank Draft or Bank Transfer (RTGS) and /or cheques only except in the case of advertising agencies accredited to INS.

2. Advertisements are accepted for publication on top of advertisements positions on an additional charge of 25%. No advertisement is however published on top of news-matter.Top of column position cannot be guaranteed even on payment of additional charge of 25%.

3. Extra charges for top of column position are calculated on the total amount payable inclusive of amount payable for specified pages.

4. Every reasonable effort is made to publish an advertisement on the date(s) specified by an advertiser. The Management however reserves the right to vary the date or the scheduled date(s) of publication, with or without notice to the advertiser, owing to the exigencies of availability of spaces.

5. The management reserves the right to refuse, suspend or stop, in its discretion, publication of any advertisement without assigning any reasons.

6. While every endeavour will be made by the Management to avoid publication of competitive advertisements in close proximity to one another, no guarantee can be given in this respect nor will the claims be entertained for free insertions in the event of announcements of rival product appearing on the same page.

7. The placing of an order by an Advertiser/Advertising Agency constitutes a warranty by the Advertiser/Advertising Agency to the Associate Joumals Limited Management that the Advertiser/ Advertising Agency has secured the necessary authority and permission in respect of the use in the advertisement or advertisements of pictorial representation of (or purporting to be of) living persons and all references to words attributing to living persons.

8. The advertisements will be charged at the rate applicable on the day of publication of the advertisement irrespective of the date of booking, date of release order and whether the advertisement is part of any package/scheme.

9. Standing instructions are accepted over Whatsapp or email. However verbal instructions must be clear and specific. Quoting reference of the previous release order and/or new scheduled dates of insertions in respect of which the instructions are given. These instructions should be given afresh either through Whatsapp/email and/or Landline phone.

10 Booking of space for premium positions in all The Associated Journals Limited publications will be confirmed only upon receipt of original releaseorder. Fax/Scanned copies, Emails will be entertained for the same.

11. "Reader" advertisements are accepted but will be distinguished from 'news matter' by a rule around the advertisement matter and expression 'advt' will be added at bottom.

12. Solus/Semi Solus positions cannot be guaranteed on the front page.

13. Cancellation charges @20% of the total cost of the front/Full page advertisement shall be levied if a cancellation of booking is made two days before the scheduled date of publication. Cancellation charges @35% of the total cost of the full front-page advertisement shall be levied if the cancellation of a booking of front/full page advertisement is made one day before the scheduled date of the publication.

14. In the event of printing mistake, omission or non-publication of advertisement, the advertising agencies shall have to furnish the instructionson behalf of their client for republication. In the event of a dispute the liability of Management shall be restricted to the amount received against sale of spaces for the advertisement received. All disputes /claims regarding advertisement /complaints must be made within a period of one month of publication date after which no claim will be entertained.

15. The Management shall not be responsible for any loss or damage caused by an error or inaccuracy in the printing of/or omission in inserting advertisements.

16. In case of dispute, the agency shall not be entitled to invoke any condition suggestive of existence of an arbitration agreement unless specifically agreed to by the Management.

17. No deduction is allowed from bills raised against publication of advertisement(s) on account of any defective insertion(s). Any claims in these respects, if admitted, will be met by publishing a corrigendum/ free insertion or the like, depending upon the merits of the claim vis-a-vis the error in publishing the advertisement(s) or other materials. Claims for refund or for compensation, if admitted, shall be restricted to the charges for advertisement received by Management. The decision of the management shall be final in this regard.

18. The advertisements released by Government/Semi Government/ Undertakings/Autonomous body are published in classified display column only at commercial rates irrespective of the number of words.

19. The advertising agencies releasing an advertisement on behalf of its client shall be deemed to have undertaken to keep the management indemnified in respect of costs, damages or other charges incurred by the Management as a result of any legal action or threatened legal action arising from and in relation to publication of any advertisement published in accordance with the release order and the copy of instructions supplied by the agency.

20. The agency shall bring to the notice of its clients these General Terms and it shall not be open to any of its clients to plead/claim or aver ignorance of these General Terms which apply to every transaction of sale of space in particular issue(s) of any of publications of The Associated Joumals Limited.

21. No agency commission is payable on the on the classified advertisements chargeable at DAVP rates.

22. Fraction of centimetre in excess of the scheduled size shall be charged as full centimetre if the advertisement exceeds the scheduled size. If the material supplied is shorter than the scheduled size, the advertisement will be charged for the size scheduled and not for theactual space occupied or consumed by the advertisement on the basis of the short size material so supplied.

23. The Management shall not be bound by notice of stoporders, cancellations, preponements/postponements or alterations/deletions/ additions in the material(s) of advertisement(s) booked for publication in special or specified position if received less than one week prior to dates of insertion. For ordinary advertisement, the stoppage or not of cancellation must reach at least four days before the scheduled date of publication of advertisement.

24. The Management reserves the rights to revise the rates and terms and conditions without any notice.

25. Every Advertiser/Advertising Agency acknowledges having read and accepted these Terms and Conditions.

26. Courts only in New Delhi, shall have the jurisdiction to entertain and decide all disputes and claims, arising out of publication of any advertisement in the Associate Journals limited publications.

27. The Management shall be at liberty to refuse to carry advertisements/ adjust amounts paid for subsequent ads against pre-existing liabilities, even without carrying such subsequent advertisement.

28. Advertising party hereby agrees to indemnify, defend and hold harmless AJL, it's directors, officers, shareholders and agents against any and all third party claims arising out of or in connection with the content or placement of the advertisement, and to the fullest extent.

29. In no event shall AJL be liable hereunder for any indirect, incidental, special, consequential, punitive or exemplary damages or losses in connection with these terms even if advised in advance of the possibility of arising of such liability, damages or losses.

30. In no event shall AJL's aggregate liability exceed Rs. 10,000 to any advertising party.